मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 49 ● वर्ष 6, अंक 1-2 ● (संयुक्तांक) मार्च-अप्रैल 2016 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

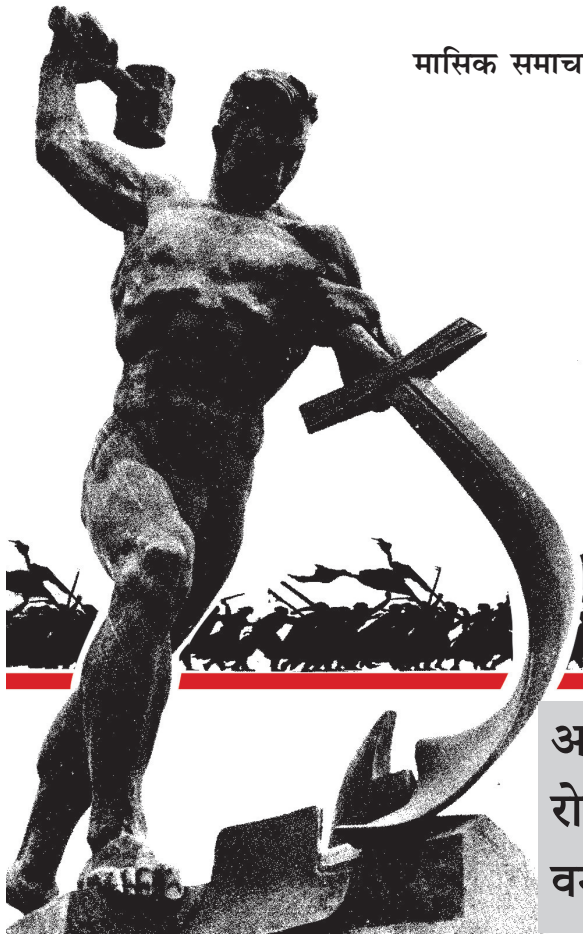

मज़दूर बिगुल

आरक्षण आन्दोलन, रोज़गार की लड़ाई और वर्ग चेतना का सवाल 7

झूठी देशभक्ति की चाशनी में संघी आतंक और फासीवाद! 9

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर कविताएँ 15

देश काग़ज़ पर बना नक्शा नहीं होता!

सच्चे देशप्रेमी वे हैं जो अपने ख़ून-पसीने से इस मिट्टी को सींचते हैं, कल-कारख़ाने चलाते हैं, हमारी धरती और हमारे लोगों के हक़ों के लिए आवाज़ उठाते हैं!

देशद्रोही वे हैं जो इस देश के लुटेरों के साथ सौदे करते हैं और इसकी सन्तानों को लूटते हैं, उन्हें आपस में लड़ाते हैं, दबाते और कुचलते हैं!!

सम्पादक मण्डल

जनता को "अच्छे दिनों" का सब्ज़बाग दिखाकर सत्ता में पहुँची भाजपा और संघ परिवार ने अपना झूठ उजागर होते ही अपने विरोध में उठने वाली आवाज़ों का गला घोंटने के लिए हमला बोल दिया है। इस बार उन्होंने फासिस्टों के पुराने आज़माये नुस्खे–अन्धराष्ट्रवाद और 'देशद्रोह'–को अपनाया है। जिन लोगों ने आज़ादी की पूरी लड़ाई में कोई हिस्सेदारी नहीं की, उल्टे अंग्रेज़ों को माफ़ीनामे लिखते रहे और आज़ादी के दीवानों की मुखबिरी करते रहे, वे आज सबसे बड़े "देशभक्त" बन बैठे हैं। आज भी जो देश की दौलत को देशी-विदेशी लुटेरों के हाथों लुटाने के घृणित सौदे कर रहे हैं, वे उन लोगों पर 'देशद्रोही' का ठप्पा लगा रहे हैं जो चाहते हैं कि इस देश के संसाधनों पर यहाँ रहने वाले सभी लोगों का बराबर का अधिकार हो।

आम जनता के अधिकारों पर डकैती और देशभर में लोगों के बीच फैलायी जा रही आपसी नफ़रत के ख़िलाफ़ सबसे पहले इस देश के छात्रों-नौजवानों ने ज़ोरदार तरीक़े से आवाज़ उठानी शुरू की थी। दमन-उत्पीड़न का हर सरकारी हथकण्डा छात्रों-नौजवानों के जोश और हिम्मत के आगे बेकार साबित हो रहा था और मोदी सरकार के असली चेहरे से नकाब तेज़ी से सरकता जा रहा था। कैम्पसों से उठी विरोध की इस लहर की तरंगें आम अवाम में भी असर पैदा करने लगी थीं और सरकार तथा संघी संगठनों की बौखलाहट बढ़ती जा रही थी। हैदराबाद विश्वविद्यालय के छात्र दलित छात्र रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या के मामले में केन्द्र सरकार के मंत्री सीधे फँस रहे थे और इसके विरोध में शुरू हुआ आन्दोलन पूरे देश के शिक्षा संस्थानों में ही नहीं बल्कि कैम्पसों से बाहर समाज में भी फैलता जा रहा था। ऐसे में संघ और सरकार कैम्पसों पर हमला करने के मौके की तलाश में थे। इसमें उनका हथियार बना संघ का छात्र संगठन 'अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद' (एबीवीपी) जो छात्रों के हितों पर शायद ही कभी लड़ता है, और ज़्यादातर गुण्डई और साम्प्रदायिक-जातीय नफ़रत फैलाने का काम ही करता आया है। दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में छात्रों के एक छोटे से समूह द्वारा पिछले तीन साल से आयोजित हो रहे कार्यक्रम को बहाना बनाकर पूरे कैम्पस पर हमला बोल दिया गया। अब दिल्ली सरकार, जेएनयू प्रशासन और ख़ुद दिल्ली पुलिस की जाँच से यह साबित हो चुका है कि 9 फरवरी को जो "देश-विरोधी" नारे लगे थे वे मुँह पर कपड़ा बाँधे कुछ बाहरी लोगों ने लगाये थे और गिरफ़्तार किये गये छात्रों की उसमें कोई भूमिका नहीं थी। यह भी साबित हो चुका है कि कई टीवी चैनलों ने फ़र्ज़ी वीडियो बनाकर दिखाये। एक फ़र्ज़ी वीडियो बनाने में केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी की एक ख़ास सहायक का नाम भी सामने आया है। लेकिन जेएनयू को बहाना बनाकर तमाम प्रगतिशील ताक़तों और विरोध की आवाज़ बुलन्द करने वाले छात्रों-युवाओं के ख़िलाफ़ देश में नफ़रत भड़काने का गन्दा खेल जारी है। संघी गुण्डों द्वारा अदालत के भीतर, जज और मीडिया के सामने दो-दो बार छात्रों, शिक्षकों, वकीलों और पत्रकारों को बुरी तरह पीटा गया, महिलाओं के साथ बेहूदगी की गयी। देश में कई शहरों में जेएनयू और वहाँ के छात्रों के समर्थन में बोलने वालों पर संघी बदमाशों-लफंगों ने हमले किये, मारपीट की। कई शिक्षकों, लेखकों और पत्रकारों को डराया-धमकाया गया।

मूर्ख और कायर संघी यह समझते थे कि ऐसे हमलों से वे आन्दोलन को तो तोड़ ही देंगे और देशभर में लोगों को यह सन्देश भी दे देंगे कि मोदी और संघ के विरोध में जो भी बोलेगा उसका यही हश्र किया जायेगा। लेकिन उनका यह दाँव उल्टा पड़ गया। न केवल जेएनयू और दिल्ली में, बल्कि पूरे देश में देशभक्ति के नाम पर संघी गिरोह के इस उत्पात के विरोध में छात्र-नौजवान और इंसाफ़पसन्द आम नागरिक हज़ारों-हज़ार की संख्या में सड़कों पर उतर आये। दुनियाभर के बुद्धिजीवियों ने इसकी कठोर भर्त्सना की और जेएनयू के छात्रों के समर्थन में आवाज़ उठायी। ख़ुद एबीवीपी की जेएनयू शाखा के तीन पदाधिकारियों ने संघी इरादों की कड़ी निन्दा करते हुए संगठन से इस्तीफ़ा दे दिया। चौतरफा बढ़ते दबाव ने मोदी सरकार को अपने क़दम पीछे खींचने पर मजबूर कर दिया और गिरफ़्तार छात्रों को ज़मानत पर रिहा करना पड़ा। लेकिन यह लड़ाई का अन्त नहीं है।

इस पूरे घटनाक्रम ने साफ़ कर दिया है कि लगातार अपनी साख खोती जा रही मोदी सरकार और आर.एस.एस. अपने नापाक मंसूबों को अंजाम देने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। पाँच राज्यों में विधानसभा चुनाव के पहले भाजपा ने वहाँ साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की हर कोशिश कर डाली है। अगले साल उत्तर प्रदेश के महत्वपूर्ण राज्य में चुनाव होना है। और उसके दो साल बाद फिर लोकसभा चुनाव आ जायेगा। संघ जानता है कि इस बार कोई "जुमला" काम नहीं आने वाला है। इसलिए वह अपने असली एजेण्डे, यानी लोगों को भावनात्मक सवालों पर भड़काने में लग गया है।

अब यह भी साफ़ हो चुका है कि जेएनयू की पूरी घटना आर.एस.एस. की एक सोची-समझी साज़िश का नतीजा थी। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का अकादमिक माहौल काफी खुला और जनतांत्रिक है और तमाम तरह के विरोधी विचारों के बीच बौद्धिक टकराव और वाद-विवाद यहाँ की संस्कृति का हिस्सा है। अफ़ज़ल गुरु की फाँसी के सवाल पर यहाँ पहले भी कार्यक्रम हो चुके हैं। और भी कई संवेदनशील और विवादित मुद्दों पर यहाँ चर्चाएँ होती रही हैं। ऐसे तमाम सवालों पर बातचीत करने और इन पर अलग-अलग दृष्टिकोणों को सामने लाने का काम अगर विश्वविद्यालयों में नहीं होगा तो फिर कहाँ होगा? जहाँ तक अफ़ज़ल को फाँसी का सवाल है, तो अवकाशप्राप्त न्यायाधीश जस्टिस ए.पी.शाह, जस्टिस मारकंडे काटजू सहित देश के अनेक विद्वानों ने इस पर सवाल उठाए हैं और जम्मू कश्मीर की 'पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी' (पीडीपी) तो इसे 'न्याय का मज़ाक' कहती है। पीडीपी के साथ तो भाजपा कश्मीर में सरकार चला रही है। हमारे देश में

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मज़दूरों के महान नेता लेनिन के जन्मदिवस (22 अप्रैल) पर

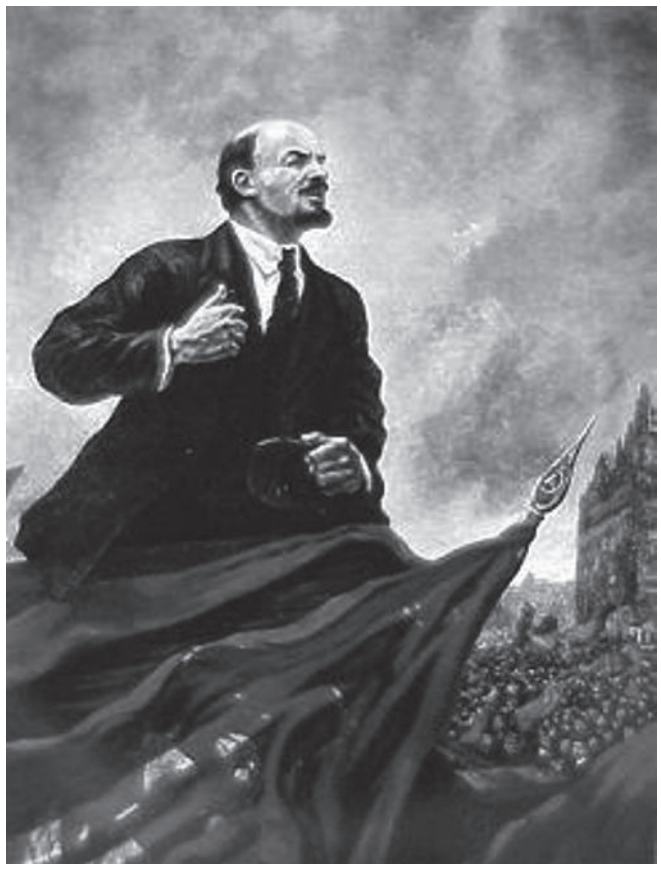

"प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ वर्ग ने अपने आप को हर जगह धार्मिक झगड़ों को उभाड़ने के दुष्कृत्यों में संलग्न किया है, और वह रूस में भी ऐसा करने जा रहा है–इसमें उसका उद्देश्य आम जनता का ध्यान वास्तविक महत्व की और बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं से हटाना है जिन्हें अब समस्त रूस का सर्वहारा वर्ग क्रान्तिकारी संघर्ष में एकजुट हो कर व्यावहारिक रूप से हल कर रहा है। सर्वहारा की शक्तियों को बाँटने की यह प्रतिक्रियावादी नीति, जो आज ब्लैक हंड्रेड (राजतंत्र समर्थक गिरोहों) द्वारा किये हत्याकाण्डों में मुख्य रूप से प्रकट हुई है, भविष्य में और परिष्कृत रूप ग्रहण कर सकती है। हम इसका विरोध हर हालत में शान्तिपूर्वक, अडिगता और धैर्य के साथ सर्वहारा एकजुटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शिक्षा द्वारा करेंगे–एक ऐसी शिक्षा द्वारा करेंगे जिसमें किसी भी प्रकार के महत्वहीन मतभेदों के लिए कोई स्थान नहीं है। क्रान्तिकारी सर्वहारा, जहाँ तक राज्य का संबंध है, धर्म को वास्तव में एक व्यक्तिगत मामला बनाने में सफल होगा। और इस राजनीतिक प्रणाली में, जिसमें मध्यकालीन सड़न साफ हो चुकी होगी, सर्वहारा आर्थिक गुलामी के, जो कि मानव जाति के धार्मिक शोषण का वास्तविक स्रोत है, उन्मूलन के लिए सर्वहारा वर्ग व्यापक और खुला संघर्ष चलायेगा।"

– लेनिन (समाजवाद और धर्म)

"आधुनिक पूँजीवादी देशों में धर्म की ये जड़ें मुख्यतः सामाजिक हैं। आज धर्म की सबसे गहरी जड़ मेहनतकश अवाम की सामाजिक रूप से पददलित स्थिति और पूँजीवाद की अन्धी शक्तियों के समक्ष उसकी प्रकटतः पूर्ण असहाय स्थिति है, जो हर रोज़ और हर घण्टे सामान्य मेहनतकश जनता को सर्वाधिक भयंकर कष्टों और सर्वाधिक असभ्य अत्याचारों से संत्रस्त करती है, और ये कष्ट और अत्याचार असामान्य घटनाओं–जैसे युद्धों, भूचालों, आदि–से उत्पन्न कष्टों से हज़ारों गुना अधिक कठोर हैं। "भय ने देवताओं को जन्म दिया।" पूँजी की अन्धी शक्तियों का भय–अन्धी इसलिए कि उन्हें सर्वसाधारण अवाम सामान्यतः देख नहीं पाता–एक ऐसी शक्ति है जो सर्वहारा वर्ग और छोटे मालिकों की ज़िन्दगी में हर क़दम पर "अचानक", "अप्रत्याशित", "आकस्मिक", तबाही, बरबादी, गरीबी, वेश्यावृत्ति, भूख से मृत्यु का ख़तरा ही नहीं उत्पन्न करती, बल्कि इनसे अभिशप्त भी करती है। ऐसा है आधुनिक धर्म का मूल जिसे प्रत्येक भौतिकवादी को सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए, यदि वह बच्चों के स्कूल का भौतिकवादी नहीं बना रहना चाहता। जनता के दिमाग से, जो कठोर पूँजीवादी श्रम द्वारा दबी-पिसी रहती है और जो पूँजीवाद की अन्धी– विनाशकारी शक्तियों की दया पर आश्रित रहती है, शिक्षा देने वाली कोई भी किताब धर्म का प्रभाव तब तक नहीं मिटा सकती, जब तक कि जनता धर्म के इस मूल से स्वयं संघर्ष करना, पूँजी के शासन के सभी रूपों के ख़िलाफ़ ऐक्यबद्ध, संगठित, सुनियोजित और सचेत ढंग से संघर्ष करना नहीं सीख लेती।"

– लेनिन (धर्म के प्रति मज़दूरों की पार्टी का रुख)

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:
डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

मज़दूर माँगपत्रक आन्दोलन के बैनर तले

मोदी और केजरीवाल सरकार से अपनी माँगों को लेकर दिल्ली के हज़ारों मज़दूरों का प्रदर्शन
जन्तर-मन्तर पर हुई 'मज़दूरों की महापंचायत'

'दिल्ली मज़दूर यूनियन' के बैनर तले रविवार को दिल्ली के हजारों मज़दूरों ने केन्द्र की मोदी सरकार और दिल्ली की केजरीवाल सरकार के समक्ष अपनी माँगों को लेकर नई दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर विशाल प्रदर्शन किया फिर यहीं मज़दूरों की महापंचायत आयोजित की गयी। इस मज़दूर पंचायत के बाद मोदी और केजरीवाल का पुतला दहन भी किया गया।

इस प्रदर्शन में दिल्ली की आँगनवाड़ी कर्मचारियों की बड़ी संख्या में भागीदारी रही। दिल्ली के अलग-अलग इलाकों से आये मज़दूर पहले रामलीला मैदान पर इकठ्ठा हुए और फिर वहाँ से यह विशाल रैली जन्तर-मन्तर तक गयी। फिर जन्तर-मन्तर पर ही इन मज़दूरों की महापंचायत भी आयोजित की गयी। दिल्ली के मज़दूरों के इस रैली और प्रदर्शन में आँगनवाड़ी की महिलाओं से लेकर वजीरपुर के मज़दूर, शकुरबस्ती के झुग्गीवासी, दिल्ली मेट्रो रेल के कर्मचारी, करावल नगर,खजूरी की मज़दूर आबादी के साथ गुड़गाँव से आये मज़दूरों की भागीदारी भी रही।

दिल्ली मज़दूर यूनियन की संयोजक शिवानी ने सभा में कहा कि पिछले दो सालों में दिल्ली की मज़दूर और ग़रीब आबादी को दो शब्दों ने बहुत बेवकूफ बनाया है-'अच्छे दिन' और 'आम आदमी'! 'अच्छे दिनों' और 'आम आदमी' का मंत्र जपने वाले देश के प्रधनमंत्री नरेन्द्र मोदी और दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने इन दो सालों में दिल्ली के मेहनतकशों के साथ ऐसा बर्ताव किया है जैसा सड़क चलते बटमार और उठाईगीरे भी नहीं करते। ये दोनों ही सरकारें आम मेहनतकशों के हक़-अधिकार एक-एक करके छीन रही हैं। साथ ही लोगों को उल्लू बनाने के लिए आपस में झगड़े की नौटंकी भी खूब कर रही हैं। लेकिन, सच तो यह है कि मोदी और केजरीवाल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। फर्क बस इतना है कि जो काम मोदी पूँजीपतियों और कॉरपोरेट घरानों के लिए डंके की चोट पर करता है वही काम केजरीवाल थोड़ा छुप-छुपाकर करता है। लेकिन, हम मज़दूरों के प्रति इनके रवैये में कोई फर्क नहीं है।

उन्होंने कहा कि मई 2014 में नरेन्द्र मोदी की सरकार बनने के बाद से मज़दूरों के अधिकारों पर लगातार हमले जारी हैं। गद्दी सँभालते ही मोदी ने पूँजीपतियों के वफादार की भूमिका निभायी है जिन्होंने उसके चुनाव प्रचार पर करोड़ों रुपये पानी की तरह बहाये थे। अपने आकाओं को खुश करने के लिए मोदी सरकार ने आते ही रहे-सहे श्रम कानूनों की भी धज्जियां उड़ा डाली हैं। 'विकास-विकास' की रट लगाने वाले नरेन्द्र मोदी के विकास का अर्थ हैः पूँजीपतियों का बेरोक-टोक ज़बरदस्त मुनाफ़ा और अमीरजादों के लिए चमचमाते शॉपिंग मॉल, 8-लेन एक्सप्रेस हाईवे, बुलेट ट्रेन। जबकि मज़दूरों के लिए इसका मतलब है 'देश और राष्ट्र के विकास' के लिए 15-15 घण्टे कारखाने और वर्कशॉपों में बिना न्यूनतम मज़दूरी के चुपचाप हाड़ गलाना! 'मेक इन इण्डिया' और 'स्टार्ट अप इण्डिया' जैसे खोखले नारों की सच्चाई है-पूँजीपतियों और कारखानेदारों को मज़दूरों के माँस को मण्डी में खुलकर बेचने की आज़ादी देना। जो इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठायेगा वह देश का दुश्मन कहलायेगा। देशभक्ति को 'सरकार-भक्ति' बना दिया गया है। यही कारण है कि मज़दूरों, स्त्रियों, दलितों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों का बर्बर दमन किया जा रहा है और हर किस्म के राजनीतिक विरोध की आवाज़ को कुचलने का काम भी अंजाम दिया जा रहा है। मोदी सरकार के 'अच्छे दिनों' का सच यही है!

'मज़दूर बिगुल' अख़बार के संपादक अभिनव ने कहा कि दिल्ली में जबसे केजरीवाल की सरकार बनी है तबसे दिल्ली के मेहनतकशों का हाल बेहाल है। पिछले एक साल में कई बार झुग्गियाँ उजाड़ी गयी हैं। आँगनवाड़ी की महिलाओं से लेकर एम.सी.डी। के सफाईकर्मियों तक, गेस्ट टीचरों से लेकर ठेका कर्मियों तक-सभी अपनी माँगों को लेकर सड़कों पर आते रहते हैं। केजरीवाल के पास इन सबका बकाया वेतन भुगतान करने का पैसा नहीं है। लेकिन, आते ही उसने अपने विधायकों का वेतन 2 लाख 35 हजार कर दिया और अपने सरकारी प्रचार पर 526 करोड़ रुपये उड़ा दिये! भ्रष्टाचार का सफाया करने आये 'श्रीमान सुथरा जी' के 23 विधयकों के खिलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं। बात-बात पर 'आम आदमी' का दम भरने वाली केजरीवाल सरकार के 44 विधायक करोड़पति हैं जिनमें से ज़्यादातर कारखानेदार या व्यापारी हैं। अपनी फैक्ट्री-कारखानों में ये श्रम कानूनों का कितना पालन करते हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं है। केजरीवाल सरकार का असली मज़दूर-विरोधी चेहरा तब सामने आया जब पिछले साल 25 मार्च को दिल्ली सचिवालय पर अपनी माँगों के साथ आये मज़दूरों पर उसने बर्बर लाठीचार्ज करवाया। दिल्ली में ठेकेदारी प्रथा खत्म करने, झुग्गीवासियों को पक्के मकान देने, आठ लाख नौकरियाँ देने जैसे वायदों पर केजरीवाल एकदम चुप हैं। छोटे पूँजीपतियों, कारखानेदारों, व्यापारियों की नुमाइन्दगी करने वाले केजरीवाल के 'आम आदमी' ये ही परजीवी जोंकें हैं।

उन्होंने कहा कि मोदी व केजरीवाल सरकार दिल्ली के मुद्दों पर जो विरोध् की नौटंकी करते है वो सिर्फ मेहनतकश लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए की जाती है। उन्होंने कहा कि मोदी सरकार देशभक्ति को सरकार भक्ति से जोड़ने की कोशिश कर रही है और जो भी मोदी सरकार की नीतियों की आलोचना करता है, अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाता है उन्हें तुरन्त ही देशद्रोही घोषित कर दिया जाता है। उन्होंने कहा कि भाजपा और आरएसएस जो आज देशभक्ती का प्रमाणपत्र बाँट रहे हैं, उनके खुद का इतिहास अंग्रेजों के आगे सिर झुकाने, मुखबिरी करने और माफीनामा का रहा है। उन्होंने बताया कि 1925 में बने आरएसएस ने 1947 तक आज़ादी की लड़ाई में कभी हिस्सा ही नहीं लिया उल्टा आज़ादी के लिए लड़ रहे क्रान्तिकारियों की मुखबिरी की। उन्होंने कहा कि आज हमें मज़दूरों के हक़-अधिकारों के लिए लड़ने के लिए मोदी सरकार के इस फासीवादी चरित्र को भी उजागर करना होगा। उन्होंने कहा कि वहीं 'चुनाव-चुनाव' के इस खेल में जो तीसरी पार्टी काँग्रेस है वह कुछ समय के लिए हाशिये पर लग रही है। लेकिन भूलना नहीं चाहिए की इन घोर मज़दूर विरोधी नीतियों की शुरुआत 1990-91 में काँग्रेस ने ही की थी। असल में भाजपा, काँग्रेस, आप और संसदीय वाम का झगड़ा सिर्फ इस बात का है कि अगले पाँच साल तक जनता को लूटने का ठेका कौन लेगा।

'दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन' के सनी ने कहा कि ऐसे समय में मज़दूरों पर बढ़ते हमलों को रोकने के लिए केंद्रीय ट्रेड यूनियनें बीच-बीच में विरोध की नौटंकी करती हैं। बैंक, बीमा, बिजली, कोयला, स्टील जैसे अहम सेक्टर इन चुनावी ट्रेड यूनियनों के हाथ में है। ये चाहें तो हफ्ते भर लम्बी हड़ताल करके पूँजीवाद का चक्का जाम कर सकती हैं। लेकिन, ये ऐसा नहीं करती हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि ये मज़दूर वर्ग के इकठ्ठा हुए गुस्से को प्रेशर कुकर में लगी सीटी की तरह एक दिवसीय हड़ताल की रस्म निभाकर बाहर निकालती रहती हैं। यदि ये ऐसा न करें तो हालात विस्पफोटक हो सकते हैं। ये दलाल ट्रेड यूनियनें पूँजीवादी व्यवस्था की सुरक्षा पंक्ति का ही काम करती हैं। उन्होंने कहा कि पिछले दो साल से मोदी सरकार व एक साल से दिल्ली सरकार आम लोगों को बेवकूफ बना रही हैं। दोनों ही सरकारें जुमलेबाजी करते हुए आम मेहनतकशों के हक़-अधिकारों एक-एक करके छीन रही है।

दिल्ली मज़दूर यूनियन व अन्य यूनियनों की ओर से जो ज्ञापन भारत व दिल्ली सरकार को दिया गया, उसमें प्रमुख मांगे ये हैं : एक श्रम कानूनों में किये जा रहे मज़दूर-विरोधी संशोधनों को तत्काल रोका जाये। दूसरा, सभी मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी 15 हज़ार हो। तीसरा, ठेका प्रथा उन्मूलन क़ानून बनाया जाये। चौथा, मनरेगा की तर्ज पर राष्ट्रीय शहरी रोज़गार गारण्टी कानून लागू किया जाये, चौथा झुग्गीवासियों का पक्के मकान दिया जाये और मज़दूरो, रिक्शा चालकों, रेहड़ी खोमचा लगाने वाले सभी स्वतंत्र दिहाड़ी मज़दूरों का पंजीकरण केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा शीघ्र किया जाये।

इस विशाल प्रदर्शन व रैली में दिल्ली मज़दूर यूनियन के साथ बिगुल मज़दूर दस्ता, दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कस एण्ड हेल्पर्स यूनियन, शकुरबस्ती झुग्गी पुर्नवास समिति, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन, नौजवान भारत सभा, ऑटोमोबाईल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन, ऑटो मोबाइल मज़दूर संघर्ष समिति, करावलनगर मज़दूर यूनियन और दिल्ली मेट्रो रेल कॉण्ट्रेक्ट वर्कर्स यूनियन की भागीदारी रही। जन्तर-मन्तर पर हुई सभा में विभिन्न यूनियनों और संगठनों के प्रमुख वक्ताओं ने भी इस सभा को सम्बोधित किया। इस सभा का संचालन बेबी ने किया।

- बिगुल संवाददाता

'बीडीएस इंडिया कन्वेंशन' में इज़रायल के पूर्ण बहिष्कार का आह्वान

फ़िलिस्तीन के विरुद्ध इज़रायल की नस्लभेदी नीतियों और लगातार जारी जनसंहारी मुहिम के विरोध में 6 मार्च 2016 को नई दिल्ली के गांधी शान्ति प्रतिष्ठान में आयोजित 'बीडीएस इंडिया कन्वेंशन' में इज़रायल के पूर्ण बहिष्कार का आह्वान किया गया। 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' की ओर से आयोजित बीडीएस यानी बहिष्कार, विनिवेश, प्रतिबंध कन्वेंशन में देश के विभिन्न भागों से आये बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं ने सर्वसम्मति से तीन प्रस्ताव पारित किये जिनमें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की प्रस्तावित इज़रायल यात्रा रद्द करने और इज़रायल के साथ सभी समझौते-सहकार निरस्त करने, इज़रायली कंपनियों और उत्पादों का बहिष्कार करने तथा इज़रायल का अकादमिक एवं सांस्कृतिक बहिष्कार करने की अपील की गयी। इस सवाल को लेकर आम जनता में व्यापक अभियान चलाने का भी निर्णय लिया गया। कन्वेंशन के दौरान यह आम राय उभरी कि ज़ायनवाद के विरुद्ध प्रचार उनके वैचारिक 'पार्टनर' हिन्दुत्ववादी फासिस्टों का भी पर्दाफ़ाश किये बिना प्रभावी ढंग से नहीं चलाया जा सकता। आम लोगों के बीच जाकर उन्हें यह समझाना होगा कि गाज़ा के हत्यारों और गुजरात के हत्यारों की बढ़ती नज़दीकी का राज़ यही है कि दोनों मानवता के दुश्मन हैं।

आनन्द सिंह द्वारा 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' की ओर से प्रस्तुत रिपोर्ट में कहा गया कि फ़िलिस्तीनियों के ख़िलाफ़ ज़ायनवादी मुहिम बदस्तूर जारी है। गाज़ा अभी भी खुली जेल बना हुआ है और वेस्ट बैंक में ग़ैर-कानूनी बस्तियों का बसाया जाना जारी है। इज़रायली सैनिक और 'सेटलर' इज़रायली सत्ता के नग्न समर्थन से इतने बेख़ौफ़ हैं कि आम फ़िलिस्तीनियों पर ही नहीं, बल्कि वहाँ जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय कार्यकर्ताओं, जाँच दलों, पत्रकारों आदि पर भी जानलेवा हमले कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि अपने से सैकड़ों गुना ताक़तवर दुश्मन का मुक़ाबला करने के लिए फ़िलिस्तीनियों ने अपने प्रतिरोध का वैश्वीकरण करने की जिन रणनीतियों को अपनाया है उनमें बीडीएस का अहम स्थान है। वर्ष 2005 में फ़िलिस्तीन के कई सिविल सोसाइटी संगठनों ने पिछली सदी में दक्षिण अफ़्रीका की नस्लभेदी सत्ता के बहिष्कार की विश्वव्यापी मुहिम की सफलता से प्रेरणा लेते हुए दुनिया भर के तमाम इंसाफ़पसन्द और संवेदनशील नागरिकों से अपील की थी कि वे इज़रायल का बहिष्कार करें, जिन अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियों ने इज़रायल में निवेश किया है वे अपने निवेश वापस लें, एवं इज़रायल पर प्रतिबन्ध लगाए जायें ताकि उस पर अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का पालन करने के लिए दबाव बनाया जा सके। बीडीएस का असर सीधे तौर पर इज़रायल की अर्थव्यवस्था पर हो रहा है और ज़ायनवादी बौखलाकर अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन व फ्रांस जैसे मुल्कों में इज़रायल के बहिष्कार की मुहिम को आपराधिक और ग़ैर-कानूनी बनाने के लिए उन मुल्कों की सरकारों पर दबाव डाल रहे हैं। वेनेजुएला एवं बोलिविया जैसे देश एवं कई प्रख्यात बुद्धिजीवी इज़रायली हुकूमत को 'एपारथाइड' या नस्लभेदी घोषित कर चुके हैं। बोलिविया ने तो इज़रायल को आतंकवादी राज्य तक घोषित कर दिया है। रक्षा उद्योग इज़रायली अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ है और भारत इज़रायली हथियारों का सबसे बड़ा ख़रीदार बन गया है। हमें इस बात का विरोध करना होगा कि हमारे टैक्सों के पैसे फ़िलिस्तीनी बच्चों का ख़ून बहाने के लिए इस्तेमाल किये जायें।

वरिष्ठ पत्रकार सुकुमार मुरलीधरन ने कहा कि भारत हमेशा से फ़िलिस्तीन की मुक्ति का समर्थक रहा है लेकिन हाल के वर्षों में यह नीति बदल गयी है। नरेन्द्र मोदी शायद विधानसभा चुनावों के बाद के मई में इज़रायल जाने की योजना बना रहे हैं। हमें अभी से इस यात्रा को रद्द करने का दबाव बनाना चाहिए। उन्होंने पश्चिम एशिया में साम्राज्यवादी साज़िशों का विस्तार से ब्यौरा देते हुए बताया कि इज़रायल फ़िलिस्तीनियों को पूरी तरह ख़त्म करके उस पूरे इलाके पर कब्ज़ा करना चाहता है। आज गाज़ा को 20 लाख लोगों की जेल में तब्दील कर दिया गया है लेकिन यह स्थिति चलती नहीं रह सकती। बीडीएस आन्दोलन ने इज़रायल को काफ़ी चिन्ता में डाल दिया है।

'द संडे इंडियन' के असिस्टेंट एडिटर और वॉरसा युनिवर्सिटी के इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल रिलेशन्स में विज़िटिंग फैकल्टी सौरभ कुमार शाही ने कहा कि भारत में इस आन्दोलन को आगे बढ़ाना एक बड़ी चुनौती है क्योंकि हिन्दुत्ववादी राजनीति ने मुस्लिम विरोधी भावनाओं को भुनाने के लिए इस मुद्दे का इस्तेमाल किया है। समाज में बढ़ी मुसलमान विरोधी भावनाओं के कारण बहुत से लोग अन्दर-अन्दर सोचते हैं कि जैसा इज़रायली वहाँ पर मुसलमानों के साथ कर रहे हैं, वैसा ही हमें यहाँ भी करना चाहिए। सौरभ ने कहा कि हमें लोगों को समझाना चाहिए कि जो फ़िलिस्तीनियों के लिए ख़राब है वह आपके लिए भी क्यों ख़राब है।

लेखिका पेगी मोहन ने कहा कि यहूदी धर्म और ज़ायनवाद में वही फर्क है जो हिंदू धर्म और हिन्दुत्व की राजनीति में है और इसीलिए इन दोनों घोर दक्षिणपंथी ताकतों के बीच आपसी एकता भी है। जिस तरह यहाँ हिंदुत्ववादी राजनीति युवा लोगों को अंधराष्ट्रवाद के नाम पर उकसाती है उसी तरह इज़रायली ज़ायनवादी भी फ़िलिस्तीन के विरुद्ध अपनी युवा आबादी की भावनाएं भड़काकर उनका इस्तेमाल करते हैं। मोदी सरकार इज़रायल से जनता को दबाने और नियंत्रित करने सलाह ले रही है। वे कश्मीर में उन्हीं तकनीकों को आज़माना चाहते हैं जो इज़रायल गाज़ा में लागू करता रहा है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में अरबी एवं अफ्रीकी अध्ययन केन्द्र के प्रो. मोहम्मद अजमल ने फ़िलिस्तीन को एक वैश्विक सवाल बताते हुए कहा कि यह मुसलमानों का मसला नहीं बल्कि इंसाफ़ की लड़ाई है। इज़रायल लगातार फ़िलिस्तीनियों की ज़मीनें हड़पता रहा है और संयुक्त राष्ट्र के तमाम प्रस्तावों को मानने से इंकार करता रहा है।

वरिष्ठ पत्रकार और जामिया विश्वविद्यालय के पश्चिम एशिया अध्ययन केंद्र के पूर्व अध्यापक क़मर आग़ा ने इस मुहिम को छोटे शहरों-कस्बों तक ले जाने और सांस्कृतिक माध्यमों से इज़रायल की हरकतों के बारे में लोगों को जागरूक करने पर बल दिया। उन्होंने फ़िलिस्तीन को नेस्तनाबूद करने पर आमादा इज़रायल के इरादों और उस पूरे क्षेत्र में साम्राज्यवादी साज़िशों के बारे में विस्तार से बताया।

मुंबई से आये फ़िलिस्तीन सॉलिडैरिटी कमिटी के फ़िरोज़ मिठीबोरवाला ने इज़रायल के बहिष्कार आंदोलन को तेज़ करने की बात करते हुए कहा कि हमें हिंदुत्ववादी कट्टरपंथियों के साथ ही इस्लामी कट्टरपंथियों का भी विरोध करना होगा।

कन्वेंशन में पारित तीन प्रस्तावों में प्रधानमंत्री की इज़रायल यात्रा रद्द करने और इज़रायल के साथ सभी समझौते-सहकार निरस्त करने, इज़रायली कंपनियों और उत्पादों का बहिष्कार करने तथा इज़रायल का अकादमिक एवं सांस्कृतिक बहिष्कार करने की अपील की गयी। इस सवाल को लेकर आम जनता में व्यापक अभियान चलाने का भी निर्णय लिया गया।

कन्वेंशन में फ़िलिस्तीनी छात्रा दीना हिज्जो, जामिया की छात्रा नादिया, पत्रकार बोधिसत्व मैती, जेएनयू की शोधछात्रा लता, नौजवान भारत सभा के शिवम अनिकेत और भारत में रह रहे फ़िलिस्तीनी नागरिक नासिर बरकत ने भी अपनी बात रखी। कन्वेंशन में वरिष्ठ पत्रकार रामशरण जोशी, लखनऊ से आये प्रो. रमेश दीक्षित, रिहाई मंच, उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष मोहम्मद शोएब, कवयित्री कात्यायनी, पत्रकार वर्गीस कोशी, बिहार के विधायक डा. शकील अहमद, युवा संवाद के राकेश रफ़ीक, लेखिका साज़ीना राहत, शुभदा चौधरी, ए. बिस्वास, गौहर इक़बाल, निधीर चित्तूर, डा. सुभाष गौतम, रंजना बिष्ट, कल्पना शास्त्री, साहित्य विजय, अमन सिंह, मनोहर प्रसाद सहित बड़ी संख्या में बुद्धिजीवियों, छात्रों और कार्यकर्ताओं ने हिस्सेदारी की। कार्यक्रम का संचालन सत्यम ने किया तथा कविता कृष्णपल्लवी ने आयोजकों की ओर से आरंभिक वक्तव्य रखा। रेज़ोनेंस की ओर से तपीश मैंदोला ने फ़िलिस्तीन के संघर्ष के समर्थन में कुछ गीत प्रस्तुत किये और कात्यायनी ने अपनी कविता 'गाज़ा-2015' का पाठ किया।

चन्द्रशेखर आजाद के 85वें शहादत के अवसर पर

नौजवान भारत सभा ने शिक्षा-रोज़गार अधिकार अभियान की शुरुआत की

हरियाणा। नौजवान भारत सभा ने 28 फरवरी को शहीद चन्द्रशेखर आजाद के शहादत के अवसर नरवाना में शिक्षा-रोजगार अधिकार रैली का आयोजन किया। शिक्षा-रोजगार के मुद्दे पर कैथल, कलायत के युवाओं की बैठक की गयी। नौभास के रमेश ने बताया की ज भारत दुनिया का सबसे अधिक युवा–आबादी वाला देश है। मौजूदा समय में देश में 65 फीसदी आबादी नौजवानों की है लेकिन अफसोस इनमें से लगभग 28 करोड़ नौजवान बेरोजगार की फौज में खड़े हैं । हम सभी जानते हैं आज एक सरकारी नौकरी के पीछे लाखों बेरोजगार की लाईन रहती है जिसकी ताजा मिसाल उत्तर प्रदेश की घटना है जिसमें चपरासी के 368 पदों के लिए 23 लाख नौजवान लाईन में थे जिनमें पीएचडी से लेकर ग्रेजुएट नौजवान की संख्या अच्छी–खासी थी । वैसे हरियाणा के नौजवान भी जानते है पुलिस, फौज, रेलवे आदि सभी भर्तियों में एक–एक नौकरी के पीछे दस–दस हजार बेरोजगार होते है जबकि सरकारी नौकरी भ्रष्टाचारा की भेंट चढ़ जाती है । एक आँकड़े के मुताबिक देश में 15–30 उम्र वाली आबादी में 13.3 प्रतिशत की दर से बेरोजगारी बढ़ रही है । ये समय बढ़ती बेरोजगारी की समस्या के खिलाफ एकजुट होने का है वरना सही रास्ता नहीं मिलने पर नौजवानों आबादी नशे या अपराध के दलदल में जा सकती है । इसलिए सही रास्ता खोजने में नौजवानों को ही आगे आना होगा ।

कलायत में शहीद भगतसिंह पुस्तकालय बैठक में हरियाणा के मौजूदा हालात पर बात रखते हुए कहा कि हरियाणा में आरक्षण आन्दोलन के दौरान हुई आगजनी और हिंसा बेहद शर्मनाक घटना है जिसमें 10 दिनों तक पूरा हरियाणा के कई शहरों में जातिय हिंसा फैली जिसमें लगभग 25 लोगों जान चली गयी, 200 से ज्यादा दुकानें जला दी गयी। ये भयानक ताडव कई दिनों तक चलता रहा। दूसरी तरफ भाजपा की खट्टर सरकार , कंग्रेस से लेकर अन्य पार्टियाँ अपनी गन्दी वोटबैंक की राजनीति के लिए हिंसा फैलाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। पूरा प्रशासन से लेकर सेना तक

मूकदर्शक बनी रही। हमें ये सझना होगा कि आखिरकार जाट आरक्षण आन्दोलन का रूप इतना हिंसात्मक क्यों हुआ इसकी गहनता में हमें जाने की जरूरत है। सबसे पहले देखा जाये कि जाट आबादी जो आरक्षण की मांग को लेकर सड़को पर आई उसकी असल वजह आरक्षण नहीं रोजगार का संकट था। क्योंकि पिछले एक दशक से पूँजीवादी कृषि संकट के कारण मध्यम और गरीब किसान आबादी लगातार तबाह और बर्बाद हो रही है वहीं बीते एक वर्ष हरियाणा के किसानों को न तो बाजार भाव से फसलों के दाम मिलें और रही-सही कसर मौसम की मार पूरी कर दी । वहीं भाजपा ने चुनाव से पहले स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू करने का वादा किया था जो किसानों के लिए जुमला साबित हो रहा है । वहीं दूसरी तरफ भाजपा सांसद राजकुमार सैनी की (भाजपा हाईकामन से तय) जातिगत बयानबाजी ने जाट आबादी को उकसाने में भी भूमिका निभाई । असल में हरियाणा में भाजपा सरकार मोदी लहर के जरिए सत्ता में आयी थी लेकिन लहर हर बार नहीं होती इसलिए भाजपा हरियाणा में 'बांटो और राज करो' की चाल चलकर एक वोटबैंक तैयार करना चाहती थी । इसलिए उन्होंने जाट और गैर–जाट को आपस में लड़वा दिया हालांकि हम पहले भी कहे चुके है इसमें सभी चुनावी पार्टियां शामिल थी । लेकिन भाजपा सरकार जनता का ध्यान मँहगाई, बेरोजगारी और अन्य समस्याओं से भटकाने के लिए जातिय ध्रुवीकरण की राजनीति करने में कामयाब रही ।

ऐसे हालात में हरियाणा के नौजवानों को चुनावी पार्टियों की जात-पात की गन्दी राजनीति का पर्दाफाश करना होगा वरना ये हमारे समाज में जातिवाद का वो जहर घोलगी जिसका नुकसान हमारी आने वाली पीढ़ियों को उठाना पड़ेगा ।

नौभास के अजय ने बताया कि आज प्रदेश के सभी युवाओं को जाति-धर्म की बेड़ियों को तोड़कर शिक्षा और रोजगार के आन्दोलनों की अलख जगानी होगी। शिक्षा और रोजगार का हक हमारा बुनियादी हक हैं और हम इसे हर कीमत पर लेकर रहेगें । इसके लिए जरूरी है कि शिक्षा-रोजगार के हक के लिए व्यापक युवा-आन्दोलन संगठित किया जाये ।

– बिगुल संवाददाता

सरकारों की बेरुखी का शिकार – ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना

रोजगार का हक एक बुनियादी हक है जिसे मुनाफे पर टिका पूँजीवादी आर्थिक ढाँचा हमेशा से कुचलता आया है। इस हक के लिए मज़दूर, मेहनतकश, नौजवान संघर्ष करते आये हैं। बेरोजगारी के सताए लोगों के आक्रोश को शांत करने के लिए पूँजीवादी हुक्मरानों को मज़बूर होकर जनता के लिए जनकल्याण के कुछ कदम उठाने पड़ते हैं। दस साल पहले कांग्रेस के नेतृत्व वाली गठबन्धन सरकार ने बहुचर्चित नरेगा कानून (जिसका बाद में नाम बदल कर 'मनरेगा' यानि महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी कानून कर दिया गया था) बनाया गया था। इस कानून के पीछे एक कारण यह भी था कि कृषि क्षेत्र में रोजगार लगातार घटता जा रहा है और रोजगार की तालाश में करोड़ों लोग शहरों की ओर प्रवास कर रहे हैं। शहरों में भी रोजगार का दायरा तंग है और यहाँ भी विस्फोटक हालात बनते जा रहे हैं। गाँवों से शहरों की तरफ प्रवास कम करना भी ग्रामीण गारण्टी योजना का एक महत्वपूर्ण मकसद था। इस योजना को लागू करते समय गाँवों में गरीबी-बेरोजगारी खत्म करने के बड़े-बड़े दावे किये गये थे। केन्द्र की मोदी सरकार व कांग्रेस आदि पार्टियों ने इस योजना के दस साल पूरे होने पर जशन मनाए हैं। लेकिन वास्तव में इस योजना के दस सालों ने हुक्मरानों के दावों की पोल खोल कर रख दी है।

ग्रामीण रोजगारी गारण्टी कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे गाँवों में बेरोजगारी व गरीबी का खात्मा हो सकता हो। इस कानून के तहत 100 दिनों के रोजगार की गारण्टी का वादा किया गया है। इसके तहत सरकार रोजगार की कम और बेरोजगारी की अधिक गारण्टी करती है! सरकार इस कानून के तहत ऐलान कर चुकी है 100 दिनों से अधिक रोजगार का तो यह वादा भी नहीं कर सकती! लेकिन जितने रोजगार का वादा किया भी गया था उस वादे पर भी खरा नहीं उतरा गया। जनविरोधी सरकारों से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है। सरकारें चाहे कांग्रेस की रही हों चाहे भाजपा की या अन्य पार्टियों की, सभी के बारे में यही सच है।

2 फरवरी 2006 को इस योजना को देश के 200 जिलों में लागू किया गया था। साल 2007-08 में इसे 130 अन्य जिलों और फिर 1 अप्रेल 2008 से देश के सभी जिलों (593) में लागू किया गया। आज हालत यह है कि यह योजना फण्डों की कमी और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ चुकी है। 100 दिनों के रोजगार का वादा किया गया था लेकिन साल 2006-07 से 2014-15 तक कुल ग्रामीण परिवारों के एक चौथाई परिवारों को प्रति परिवार रोजगार 54 दिनों से कभी ऊपर गया ही नहीं। औसतन 40-45 दिनों (डेढ महीना!) का ही काम मिलता रहा है। साल 2014-015 में तो यह औसत सिर्फ 39.3 थी। साल 2006-07 में इस योजना के लिए 8823.4 करोड़ रुपए रखे गये थे जब इस 200 जिलों में लागू किया गया था।

साल 2006-07 में इस योजना के लिए 8823.4 करोड़ रुपए खर्च किये गये थे जब यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी थी। साल 2014-15 के लिए 31780 रुपए देश के सभी जिलों के लिए खर्च किये गये थे। देखने में यह खर्च बढ़ा हुआ दिखाई देता है लेकिन ऐसा है नहीं। अगर हम 2006-07 की कीमतों के मुताबिक देखें तो वास्तव में खर्च की गयी राषि कम हो गयी है। साल 2006-07 की कीमतों के हिसाब से देखें तो अगर साल 2006-07 में एक जिले के लिए औसतन 44.12 करोड़ रुपए खर्च किये गये थे तो सन 2014-15 में एक जिले के लिए औसतन 25.3 करोड़ रुपए ही खर्च किये गये हैं।

साल 2015-16 के लिए कुल कितना खर्च किया गया है इसका अभी पता चलना है लेकिन मोदी सरकार ने इसके लिए 36026 करोड़ रुपए रखे थे जो कि साल 2006-07 की कीमतों के हिसाब से प्रति जिला लगभग 30 करोड़ रुपए ही बनते हैं। साल 2016-07 के लिए मोदी सरकार ने केन्द्रीय बजट में 38500 करोड़ रुपए रखे हैं। मोदी सरकार दावा कर रही है कि उसने पिछले सालों से अधिक राषि जारी की है। लेकिन यह सच नहीं है। अगर साल 2006-07 की कीमतों के हिसाब से देखा जाये तो यह राषि भी साल 2006-07 के लिए किये गये खर्च से काफी कम है।

मोदी सरकार के कार्यकाल के दौरान साल 2014-15 में 166 करोड़ और 2015-16 में 187 करोड़ नरेगा काम दिहाड़ियाँ लगी हैं। पिछले सालों से यह काफी कम हैं। साल 2016-17 के लिए 146 करोड़ काम दिहाड़ियों की ही उम्मीद की जा रही है। इस तरह मोदी राज में ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना का और भी बुरा हाल देखने में मिल रहा है।

खर्च किये गये पैसे में से कितने गरीब लोगों तक पहुँच पाते हैं इसके बारे में ठीक ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। नकली जॉब कार्डों के आधार पर सरकारी मशीनरी बहुत सारा पैसा निगलती रही है। इसके अलावा नरेगा मज़दूरों को किये काम के पैसे लेने के लिए भी छः-छः महीने इंतजार करना पड़ता रहा है। जॉब कार्ड बनवाने के लिए घूस देनी पड़ती है। मुकाबलतन अधिक गरीबी वाले क्षेत्रों को कम पैसा मिलता रहा है।

केन्द्र की मोदी सरकार और राज्यों में भाजपा, कांग्रेस व अन्य पार्टियों की सरकारें उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को जोर-शोर से लागू कर रही हैं। लोगों को सरकार की और से दी जाने वाली सहूलतों पर कुल्हाड़ा चलाया जा रहा है। ऐसी हालत में सरकारों से ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के तहत लोगों को राहत पहुँचाने के लिए सुधारों की उम्मीद करना बेवकूफी होगी। लेकिन नरेगा मजदूरों द्वारा एकजुट होकर अगर आन्दोलन किया जाता है तो सुधार हो सकते हैं।

इस योजना के कानून के तहत जो वादे किये गये हैं उन्हें तात्कालिक माँगें बनाकर संघर्ष किया जाना चाहिए। ऐसी कोशिशें हो भी रही हैं। लेकिन ये बहुत सीमित हैं। और इन्हें तेज करना होगा। कानून के तहत जो वादे किये गये हैं हमें उन तक भी सीमित नहीं रहना चाहिए। कानून का दायरा बढ़ाने के लिए संघर्ष करना होगा। रोजगार की गारण्टी सारे साल के लिए होनी चाहिए। केजुयल, बीमारियों, त्योहारों, राष्ट्रीय दिनों आदि की वेतन सहित छुट्टियाँ, ई.एस. आई., पीएफ. आदि सभी श्रम अधिकार नरेगा मज़दूरों को कानूनी तौर पर मिलने चाहिए। इसे साथ ही शहरी रोजगार गारण्टी योजना लागू करवाने के लिए भी शहरी आबादी को आगे आना चाहिए। हम मानते हैं कि रोजगार का हक हरेक नागरिक का जन्मसिद्ध अधिकार है। हर श्रम योग्य व्यक्ति को काम मिलना चाहिए। शहरों-गाँवों के लोगों को रोजगार गारण्टी के लिए विशाल संघर्ष लड़ना होगा। सरकारें, पूँजीवादी अर्थशास्त्री-बुद्धिजीवी कुतर्क करेंगे कि इसके लिए पैसा कहाँ से आयेगा। इसके लिए पैसा सरकार के पास पूँजीपतियों पर टेक्स लगाकर आयेगा। पूँजीपतियों को सरकारों की तरफ से दी जाने वाली सब्सिडियों और कर्ज माफियाँ खत्म करके आयेगा। देशों-विदेशों में भारतीय धन्नासेठों के पड़े काले धन के जखीरों को कब्जे में करके आयेगा। लोगों को रोजगार की गारण्टी करने के लिए धन के स्रोतों की कोई कमी नहीं है। मगर इसके लिए जनता जब एकजुट होकर सरकारों की गर्दन पर घुटना रखेगी तो सारी कमियाँ दूर करवा लेगी।

- लखविन्दर

महाराष्ट्र में 2 करोड़ लोग कुपोषण के शिकार

प्रतिदिन खर्च करने को 12 रुपये भी नहीं

महाराष्ट्र में 2001 के बाद सबसे ज्यादा किसानों ने 2015 में आत्महत्या की। जनवरी से अक्टूबर 2015 तक 2590 किसानों ने आत्महत्या की यानी तकरीबन हर रोज 9 किसानों ने अपनी ज़िन्दगी समाप्त कर दी। किसानों की आत्महत्याओं के इन डरा देने वाले आंकड़ों के बीच महाराष्ट्र में कुपोषण की हालत पर रिपोर्ट आयी है। इसके अनुसार महाराष्ट्र में करीब 1.98 करोड़ लोगों के पास हर रोज़ खर्च करने के लिए 12 रुपये भी नहीं हैं। महाराष्ट्र में 50 हज़ार परिवार कुपोषित हैं। इनकी हालत ऐसी है कि इन्हें हर शाम भूखे या आधे पेट सोना पड़ता है। जब एक तरफ़ प्रदेश के मुख्यमंत्री देवेंद्र फडनवीस महाराष्ट्र के विकास के लिए बड़े-बड़े प्रोजेक्ट शुरु करने की बात कर रहे हैं, मेक इन इंडिया की तरह मेक इन महाराष्ट्र के नारे देकर बड़े-बड़े सपने दिखाये जा रहे हैं वहीं दूसरी तरफ़ प्रदेश की 11 करोड़ आबादी में करीब दो करोड़ की आबादी 12 रुपये प्रतिदिन खर्च पर गुज़ारा कर रही है और कुपोषण का शिकार है।

वैसे तो सरकार का गरीबी मापने का पैमाना ही बेहद बेशर्मी भरा है जिसके हिसाब से शहरों में 32 रुपये से उपर प्रतिव्यक्ति आय वाले परिवार और गांवों में 26 रुपये से उपर प्रतिव्यक्ति आय वाले परिवार गरीब नहीं हैं। गरीबी घटाकर दिखाने के इस हेरफ़ेर के बावजूद सरकार के ही आकड़ों के हिसाब से महाराष्ट्र में कुल आबादी का 30 फ़ीसद हिस्सा ग़रीबी रेखा के नीचे जी रहा है। नेशनल फ़ैमिली हेल्थ सर्वे और नेशनल सैम्पल सर्वे के अनुसार राज्य के 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं और एक तिहाई वयस्क भी सामान्य से कम वज़न के हैं। इसी सर्वे के अनुसार महाराष्ट्र में हर साल कुपोषण से करीब 45,000 बच्चे मर जाते हैं यानी हर रोज 124 बच्चे। इतनी भयानक तस्वीर के बावजूद सत्ता में आने वाली हर सरकारें एक तो इनपर पर्दा डालने की कोशिश करती हैं इसके अतिरिक्त कुछ छोटी-मोटी स्कीमें चलाकर अपना पल्ला झाड़ लेती रही हैं।

कुपोषण को रोकने के लिए सबसे जरुरी है कि पैदा होने वाले बच्चों को इससे बचाया जाय। इस मामले में अगर सरकार द्वारा उठाये गये कदमों की बात की जाय तो सरकार ने मुख्यतः दो योजनाएं चलायी हैं- मिड डे मिल, आईसीडीएस यानी इंटिग्रेटेड चाइल्ड डेवलेपमेंट स्कीम और इंटिग्रेटेड चाइल्ड प्रोटेक्शन स्कीम। पर इन योजनाओं की सच्चाई यह है कि राज्य सरकार अपनी जीडीपी का मात्र 0.8 प्रतिशत ही इन योजनाओं पर खर्च करती है। एक गैर सरकारी संगठन द्वारा किये गये सर्वे के अनुसार सर्वे किये गये विद्यालयों के केवल 12 प्रतिशत में मिड डे मिल मिलता है। और इन 12 प्रतिशत में भी किसी में भी सरकार द्वारा तय मानक यानी प्रतिदिन की खुराक में 300 कैलोरी और 8-12 ग्राम प्रोटीन नहीं मिलता। इसप्रकार यह देखा जा सकता है कि सरकार द्वारा चलायी जाने वाली योजनाएं किस हद तक कुपोषण को दूर कर सकती हैं।

ऐसा भी नहीं है कि कुपोषण की समस्या इतनी बड़ी है कि सरकारें उनको समाप्त ही नहीं कर सकतीं। एक अनुमान के मुताबिक अगर पूरे महाराष्ट्र के 5 साल से कम उम्र के बच्चों को भी लिया जाय तो उनको एक साल तक अच्छा पोषण युक्त भोजन देने का खर्च करीब 20 हजार करोड़ आयेगा। ये खर्च महाराष्ट्र के पूरे बच्चों के लिए है जबकि महाराष्ट्र के 50 प्रतिशत बच्चे ही कुपोषित हैं तो जाहिर है ये खर्च भी कम ही आयेगा। फ़िर भी सरकार इन पर इतने पैसे खर्च नहीं करना चाहती है। दूसरी तरफ़ अगर पूँजीपतियों को दी गयी आर्थिक मदद की बात करें तो अलग-अलग सरकारों ने जनता के द्वारा चुकाये गये टैक्स से हर साल पूँजीपतियों को बड़ी-बड़ी सौगातें दी हैं। 2010 में 18715 करोड़, 2014 में 24000 करोड़ और 2015 में 28074 करोड़ राज्य सरकारों ने बड़े धान्नासेठों को आर्थिक सहायता दी। इससे समझा जा सकता है कि ये सरकारें किसके लिए काम करती हैं। जाहिर है कि सरकारों के लिए हर साल मरने वाले 45 हजार बच्चे उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ एनजीओ वाले इन मुद्दों पर कुछ न कुछ करते रहते हैं। एनजीओ से बकायदा वेतन पाने वाले इनके कार्यकर्ता गरीबों के बीच अनाज, बिस्किट, फ़ुड पैकेट बांट के संतुष्ट हो जाते हैं। दरअसल इनमें ज्यादातर लोग ऐसे होते हैं जो गरीबों को तुच्छ समझते हैं और गरीबों में कुछ खैरात बांटकर खुद के बड़प्पन का दम्भ भरना चाहते हैं। इनके लिए ज़रुरी है कि गरीब हमेशा गरीब ही बने रहें ताकि ये उनको कुछ खैरात बांटकर खुद को मसीहा समझते रहें। इसलिए कभी भी एनजीओ वाले समस्या की जड़ की बात नहीं करते बस ऊपर-ऊपर कुछ करते रहते हैं। दूसरा खतरनाक काम जो ये करते हैं वो ये है कि ये सरकार को उसकी जिम्मेदारियों से पल्ला झाड़ने का मौका देते हैं ओर जनता का धयान सरकार की लूटेरी नीतियों से हटाते हैं। जनता को ऐसे लोगों से बच कर रहना चाहिए।

कोई भी सरकार जनता द्वारा चुकाये गये टैक्स से चलती है। यह टैक्स सरकार जनता के रोज़-रोज़ की इस्तेमाल की चीजों साबुन, तेल, दाल, कपड़े जैसी हर ज़ीजों पर टैक्स बसूलकर कमाती है। इसलिए सरकार की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह जनता को शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार जैसी मूलभूत सुविधायें मुहैया कराये। अगर सरकार अपनी जिम्मेदारी से पीछे हटती है तो आज यह हमारी जिम्मेदारी बन जाती है कि ऐसी सरकार और ऐसी व्यवस्था को समाप्त कर दें।

– नितेश विमुक्त

(पेज 13 से आगे)

ख़ुद की ज़िन्दगी दाँव पर लगा महानगर की चमक-दमक को बरकरार रखते बंगलूरू के पोराकर्मिका (सफ़ाईकर्मी)

बंगलूरू का नाम सुनते ही हमें सबसे पहले याद आती हैं वहाँ की शीशे की चमक दमक से लैस बहुमंजिला इमारतें, महँगी कारों से पटा हुआ ट्रैफिक, चमचमाते मॉल और शोरूम, दुनिया भर के खाने की विविधता पेश करने वाले रेस्टोरेंट। इस महानगर को भारत के सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र की राजधानी और भारत की 'सिलिकॉन वैली' भी कहा जाता है। मुंबई, दिल्ली और कोलकाता के बाद 5634 अरब रुपये के सकल घरेलू उत्पाद के साथ बंगलूरू भारत में शीर्ष का चौथा महानगर है। हर रोज़ 24 घंटे सेवा प्रदान करने वाले रेस्टोरेंट, टैक्सी और अस्पताल यहाँ प्रचुर मात्रा में हैं। मनोरंजन के साधनों और सप्ताहाँत पर परिवार के साथ छुट्टियाँ बिताने के लिए जगहों की भी कोई कमी नहीं है। अगर आप एक मध्यम या उच्च-मध्य वर्गीय पृष्ठभूमि से हैं तो कहने की ज़रूरत नहीं कि बंगलूरू में आप ऐशो-आराम के साथ जी सकते हैं।

लेकिन आइये अब एक नज़र डालते हैं तस्वीर के दूसरे पहलू पर। यह सारा 'विकास' आख़िर किसकी बदौलत और किनकी कीमत पर हो रहा है? सच तो यह है कि जिनकी बदौलत यह 'विकास' संभव हुआ है, उन्हीं की कीमत पर भी हुआ है। एक तरफ़ चमचमाती बहुमंजिला इमारतें और दूसरी तरफ़ गन्दी नालियों से बजबजाती झुग्गी बस्तियाँ इस पूरे 'विकास' की कलई खोल के रख देती हैं। जहाँ इन बस्तियों में रहने वाले लोग निहायत ही बदहाली भरे माहौल में जीने को मजबूर होते हैं वहीँ शहर के मध्यवर्गीय, उच्च-मध्यवर्गीय और पॉश इलाकों को चमकाने के लिए यहाँ का स्थानीय निकाय बड़ी तत्परता से पेश आता है। दूसरों के गली-मुहल्लों को साफ़ करने वाले, दूसरों के शौच से भरी नालियों में घुसकर उसको साफ़ करने वाले, दूसरों को राह चलते कहीं बदबू ना आ जाये इसके लिए अपनी जान जोख़िम में डालने वाले ख़ुद निहायत ही गन्दी बस्तियों में रहने को मजबूर होते हैं जहाँ घातक और जानलेवा बीमारियों का खतरा लगातार बना रहता है। आप अब तक समझ चुके होंगे कि हम बंगलूरू के सफ़ाई कर्मचारियों के बारे में बात कर रहे हैं जिन्हें यहाँ की स्थानीय भाषा कन्नड़ में 'पोराकर्मिका' कहा जाता है। कमोबेश इन सफ़ाई कर्मचारियों के निवास ही नहीं बल्कि जिन परिस्थितियों में वे काम करते हैं वो भी बेहद अमानवीय होती है। आइये इन्हीं परिस्थितियों पर कुछ आंकड़ों की मदद से एक नज़र दौडाएं।

ब्रुहत बंगलूरू महानगरा पालिके (बीबीएमपी) की आधिकारिक वेबसाइट के अनुसार, बंगलूरू में प्रतिदिन 3500 टन कूड़ा पैदा होता है। बीबीएमपी ने सरकारी और ठेका मिलाके लगभग 20500 सफ़ाई कर्मचारियों को काम पर रखा है जिनका काम है हर रोज घरों, झुग्गी बस्तियों, दुकानों और अधिष्ठानों का कूड़ा-कचरा इकट्ठा करना। थोड़ी सी गणित करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हर सफ़ाई कर्मचारी के लिए प्रतिदिन का औसत लक्ष्य 175 किलोग्राम कूड़ा इकट्ठा करना है। बीबीएमपी ने प्रबंधन के लिए शहर को 198 वार्डों में बांटा है, इनमें से कई के दफ़्तरों में तो शौचालय और पीने के पानी जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी नहीं उपलब्ध हैं। ज़्यादातर सफ़ाई कर्मचारी (लगभग 17000 कर्मचारी) ठेके पर ही काम कर रहे हैं और इन ठेके के कर्मचारिओं की निर्धारित तनख्वाह महज़ 6991 रुपये है। यही नहीं, ठेकेदारों द्वारा उनका वेतन भुगतान भी समय पर नहीं किया जाता। अधिकतर कर्मचारियों को नंगे हाथों से काम करना पड़ता है, ठेकेदार उनको 'गम बूट', मास्क और दास्ताने नहीं देते हैं। कई ठेकेदार तो इतने लालची हैं कि एक झाड़ू तक नहीं देते। 9 घंटे के निर्धारित समय से ज़्यादा काम करने पर इन्हें ओवरटाइम भुगतान भी नहीं किया जाता है। ESP और भविष्य निधि जैसी सुविधाओं का कोई नामोनिशान नहीं है। निहायत ही अमानवीय परिस्थितियों में काम करने की वजह से ये कर्मचारी अक्सर बीमार हो जाते हैं। ठेकेदार उनसे नंगे हाथों से कूड़े में से सूखे और गीले अवयव अलग करवाते हैं। कई कर्मचारियों ने इन परिस्थितियों से तंग आकर नौकरी ही छोड़ दी है। उनकी हथेलियाँ संक्रमित हो जाती हैं और नाख़ून काले पड़ जाते हैं। वार्ड में तात्कालिक तौर पर साबुन नहीं उपलब्ध होने के कारण वार्ड में भोजन कर पाना भी संभव नहीं होता। गौरतलब है कि कूड़े के सूखे और गीले अवयवों को अलग-अलग करके रखना नागरिकों का ही काम है, पर ज़्यादातर महंगे अपार्टमेंट्स में रहने वाला मध्यवर्गीय जीव इतना भी ढंग से नहीं कर पाता और अंततः सफ़ाई कर्मचारियों को फ़िर से पृथक्करण करना ही पड़ता है। और उन्हें दूसरों के द्वारा प्रयोग करके फेंके गये 'सेनेटरी पैड' तक नंगे हाथों छूने पड़ते हैं।

बताते चलें कि पिछले कई सालों से ठेके के सफ़ाई कर्मचारी विभिन्न संगठनों के नेतृत्व में अपनी मांगें उठाते रहे हैं मसलन ठेका प्रथा ख़त्म करके उनकी नौकरियों को 'रेगुलर' करना, वेतन बढ़ा कर 15000 रुपये करना, नौ घंटे से ज्यादा काम करने पर ओवरटाइम का भुगतान, साप्ताहिक छुट्टी और त्योहारों पर भी अवकाश, दास्ताने, मास्क और गम बूट की व्यवस्था सुनिश्चित करना, शौचालय और पीने के पानी की व्यवस्था का सुनिश्चित किया जाना। अपनी इन्हीं मांगों को उठाते हुए कर्मचारियों ने 2 दिसंबर, 2015 बीबीएमपी के मुख्यालय के सामने धरना भी दिया था। ग़ौरतलब है कि कर्नाटक विधानसभा में २०१३ में मुख्यमंत्री सिद्दारमैया के नेतृत्व में पेश किये गये बजट में ही ठेका प्रथा को चरणबद्ध ढंग से ख़त्म करने का वादा किया गया था। अक्टूबर, 2015 में भी राज्य सरकार ने

बिना दास्ताने, मास्क और गम बूट के कूड़ा इकट्ठा करते पोराकर्मिका, चित्र साभार: 'द हिन्दू डॉट कॉम'

कर्नाटक राज्य सफ़ाई कर्मचारी आयोग की सिफ़ारिशों को स्वीकार करते हुए ठेका प्रथा बंद करने की बात की। पर ये सभी आश्वासन अभी तक झूठे ही साबित हुए हैं और सफ़ाई कर्मचारियों की हालत में कोई बदलाव नहीं आया है। कमोबेश सफ़ाई कर्मचारियों की ऐसी हालत केवल बंगलूरू ही नहीं बल्कि देश के हर महानगर में है। जगह-जगह ये कर्मचारी हड़ताल करने पर मजबूर हो रहे हैं। राजधानी दिल्ली में ही इस लेख के लिखे जाने के समय वहाँ के सफ़ाई कर्मचारी हड़ताल पर हैं।

इन सफ़ाई कर्मचारिओं की दुर्दशा के लिए आख़िर कौन जिम्मेदार है? क्या हमें इसके लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराना चाहिए? या श्रम मंत्री को? या बीबीएमपी को? या ख़ुद इन कर्मचारियों को ही? आख़िर क्या वजह है कि आज जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी में ज़बरदस्त ढंग से बढ़ोत्तरी हो चुकी है यानि की जब सफ़ाई से जुड़ा बहुत सारा काम ऑटोमेटिक मशीनों के द्वारा ही संचालित किया जा सकता है फ़िर भी उसमें मनुष्यों को क्यों लगाया जा रहा है? और लगाया भी जा रहा है तो काम करने के इतने गंदे हालातों में क्यों? जवाबदेह अधिकारियों पर हमें निश्चित तौर पर ऊँगली उठानी चाहिए, पर यह पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि अधिकारीयों के क्रूर आचरण के अलावा इस पूरी व्यवस्था का ढांचा भी सफ़ाई कर्मचारियों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार है। यह व्यवस्था ही ऐसी है जिसमें अमीर-ग़रीब की खाई का दिन पे दिन गहराते जाना अवश्यम्भावी है। और ऐसा किया जाता है मजदूरों का श्रम ज्यादा से ज्यादा निचोड़ के, यानि उनके श्रम की कीमत पर अधिकतम मुनाफ़ा बनाने की होड़ में। और इस मुनाफ़ा केन्द्रित व्यवस्था में इसीलिए स्वचालित मशीनों की बजाय मनुष्यों से काम लिया जा रहा है क्योंकि ठेके पर मज़दूरी कराकर इंसानों का खून पीना 'फिलहाल' सस्ता है। इसीलिए कोई भी इंसाफपसंद इंसान इस व्यवस्था के भीतर ही संवैधानिक तौर पर मिले कुछ अधिकारों को लागू करवाने के लिए तो लड़ेगा ही, पर साथ ही साथ उसे यह नहीं भूलना होगा कि इन सफ़ाई कर्मचारियों की वास्तविक मुक्ति इस पूरे सामाजिक-आर्थिक ढांचे को ही आमूलचूल ढंग से बदल देने में है और एक ऐसी व्यवस्था मुकम्मल करने में है जहाँ पर उत्पादन चंद धन्नासेठों के मुनाफ़े नहीं बल्कि पूरे समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाये।

– शिशिर गुप्ता

बोलते आँकड़े, चीखती सच्चाइयाँ!

ऑक्सफैम की एक ताजा रिपोर्ट के मुताबिक अमीर और गरीब आबादी के बीच आर्थिक गैर-बराबरी इतिहास के पहले किसी भी दौर से ज्यादा हो चुकी है। 2008 से शुरू हुए आर्थिक संकट के बाद से तो यह गैर-बराबरी और अधिक गति से बढ़ी है। रिपोर्ट के मुताबिक विश्व के 62 सबसे अमीर व्यक्तियों की कुल संपदा विश्व की 50% सबसे गरीब आबादी की संपदा के बराबर है, यानी 62 व्यक्तियों की कुल संपदा 350 करोड़ लोगों की संपदा के बराबर है! 2010 के बाद से दुनिया की सबसे गरीब आबादी में से 50 फीसदी की संपत्ति करीब 1,000 अरब डॉलर घटी है। यानी उनकी संपत्ति में 41% की जोरदार गिरावट आई है। रिपोर्ट के अनुसार 2010 में दुनिया की सबसे गरीब आबादी के 50 फीसदी के पास जितनी धन संपदा थी, उतनी ही संपत्ति दुनिया के 388 सबसे अधिक अमीर लोगों के पास थी. उसके बाद यह आंकड़ा लगातार घट रहा है. 2011 में यह घटकर 177 पर आ गया है, 2012 में 159, 2013 में 92 और 2014 में 80 पर आ गया।

अगर भारत की बात करें तो यहाँ के अमीरों का भी ऊपरी 1% हिस्सा देश की कुल संपदा का 50% हिस्सा रखता है। भारतीय अमीरों के ऊपरी 10% हिस्से की संपदा यहाँ के निचले 10% लोगों की संपदा से 370 गुना ज्यादा है! यानी अगर मान लें कि इस तबके का मज़दूर महीने में 5000/- कमाता है तो देश का ऊपरी 10 प्रतिशत अमीर तबका औसतन 5000 x 370 = 18,50,000 रुपए हर महीने कमाता है!

इन आंकड़ों से हम साफ़ देख सकते हैं कि किस तरह यह मुनाफे पर टिका पूँजीवादी ढांचा जनता के बड़े हिस्से को लगातार आर्थिक संसाधनों से भी वंचित करता जा रहा है। यह गैर-बराबरी किसी सरकार की गलत नीतियों की वजह से नहीं है बल्कि इस पूरे ढाँचे की नैसर्गिक अंतर्गति में निहित है। यह आंकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस पूँजीवादी ढाँचे के बारे में मार्क्स का किया गया विश्लेषण एकदम सटीक था कि कैसे व्यापक आबादी की कीमत पर इस पूँजीवादी ढाँचे में पूँजी का संकेन्द्रण (concentration) और centralisation बढ़ता जाता है। इस पूँजीवादी ढाँचे में उजरत और मुनाफे के बीच लगातार एक शत्रुतापूर्ण विरोध चलता रहता है जिसका समाधान केवल इस निजी संपत्ति पर आधारित व्यवस्था को उखाड़ कर ही किया जा सकता है।

– मानव

आरक्षण आन्दोलन, रोज़गार की लड़ाई और वर्ग चेतना का सवाल

हरियाणा में आरक्षण का मुद्दा एक बार फिर से गरमाया हुआ है। इसे लेकर फ़रवरी माह में जाटों की क़रीब दो सप्ताह तक शासन-प्रशासन और अन्य जात-बिरादरियों के साथ झगड़ा-फसाद होता रहा। इस दौरान हुई हिंसा, आगज़नी और तोड़फोड़ की घटनाओं ने पूरे हरियाणा को हिलाकर रख दिया। यही नहीं इस पूरे दौर में हरियाणा के समाज में जातिवाद की दुर्गन्ध एक बार फिर से वातावरण में छा गयी या कहें कि सतह पर आ गयी। आन्दोलन के शुरुआती दिनों से ही प्रशासन किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में दिखाई दिया, प्रशासनिक लकवे की इस हालत में लम्पट तत्वों (तमाम जातियों के) को भी 'खुलकर खेलने' का यानी लूटपाट और उत्पात मचाने का पूरा-पूरा मौका मिला। एक-दूसरे समुदाय की दुकानों, धर्मशालाओं और घरों को लूटने और फूँकने के लिए निशाना बनाया गया। स्वयम्भू जातीय नेताओं की करतूतों का फल आम ग़रीब आबादी को भुगतना पड़ा। सामने वाले की नज़रों में अपराधी होने के लिए 'अन्य जाति' का होना ही पर्याप्त था और बन्द दुकानों के साइनबोर्डों को देख-देख कर लूटने और फूँकने हेतु चुना जा रहा था। ज़ाहिरा तौर पर इस जातीय हिंसा में जाट आबादी को अपने आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक पहुँच और संख्याबल के कारण इक्कीस पड़ना ही था। तोड़फोड़-आगज़नी और लूटपाट के कारण निजी और सार्वजनिक सम्पत्ति का नुक्सान तो हुआ ही इसके अलावा 32 लोगों की मौत हुई और 200 से ज़्यादा घायल हो गये। सबसे ख़तरनाक चीज़ यह हुई कि 35 बिरादरी बनाम एक बिरादरी के नाम पर मेहनतकश आम जनता के बीच की फूट और बढ़ गयी। पहले ही स्थिति कोई बेहतर नहीं थी अब तो आपसी फूट और भी गहरा गयी है जिसे दूर होने में लम्बा वक़्त लग सकता है।

हरियाणा में लोगों का गुस्सा सरकारी मशीनरी और व्यवस्था के ख़िलाफ़ भी खूब निकला। लोगों द्वारा सड़क और रेल तो रोकी ही गयी इसके साथ-साथ नेताओं की कोठियों पर हमले किये गये, काफ़ी जगहों पर थानों को फूँक दिया गया, परिवहन की बसों को आग लगा दी गयी, टोल टैक्स प्लाजों को जला दिया गया और तो और सोनीपत के पास मुनक नामक जागह पर राजधानी में जाने वाली नहर के पानी को भी रोक दिया गया। बेशक इन चीज़ों को उचित नहीं ठहराया जा सकता और न ही इनकी तरफ़दारी किसी भी रूप में जायज़ है लेकिन यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि इस पूरे घटनाक्रम की ज़िम्मेदारी से शासन-सत्ता भी बच नहीं सकते। हरियाणा की भाजपा सरकार की स्थिति भी चुनावी वायदों को पूरा करने में वही 'ढाक के तीन पात' वाली रही है। नौकरी देना तो दूर उल्टा कई भर्तियों को रद्द ही कर दिया गया। 2,852 कम्प्यूटर शिक्षा से जुड़े अध्यापकों और सहायकों को पक्का नहीं किया गया, 9,455 जे.बी.टी. अध्यापकों को नियुक्ति पत्र नहीं दिया गया, 8,857 हरियाणा पुलिस के जवानों की भर्ती को रद्द कर दिया गया। क़रीब 16,000 अतिथि अध्यापकों के मसले पर कहाँ तो भाजपा के दिग्गज लैटर हेड पर लिखित में वायदा लिये हुए घूम रहे थे और अब इस मामले पर 'कान तक नहीं हिला रहे हैं', और तो और अपनी माँगों के लिए प्रदर्शन कर रहे अतिथि अध्यापकों और अध्यापिकाओं को दौड़ा-दौड़ा कर पीटा भी गया। बेरोज़गारों को दिये जाने वाले 6,000 रुपये (12वीं पास को) और 9,000 रुपये (बी.ए. पास को) के बेरोज़गारी भत्ते के मुद्दे पर भी भाजपा ने 'एक चुप सौ सुख' वाली नीति ही अपना रखी है। दूसरी ओर 35 बिरादरी बनाम एक बिरादरी के मुद्दे पर भाजपा के नेताओं ने जनता को खूब बाँटने का काम किया। राजकुमार सैनी तो ओ.बी.सी. ब्रिगेड खड़ी करने तक की बात कर रहे थे जो उनके अनुसार तथाकथित जाट आन्दोलनकारियों से सड़क पर लोहा लेती और भाजपा के ही कुछ जाट नेता-मंत्री जाट आरक्षण के समर्थन में भी गाहे-बगाहे बयानबाज़ी करते रहते थे। इसमें कोई शक नहीं है कि आरक्षण की आग के पीछे वोट बैंक की राजनीति भी काम कर रही थी जिसका कि विपक्षी पार्टियों को सीधे-सीधे चुनावी फ़ायदा होने की उम्मीद थी किन्तु स्वयं भाजपा भी हिंसा और लूटपाट के ताण्डव के लिए सीधे तौर पर ज़िम्मेदार है। धर्म और जाति के नाम पर लोगों को लड़ाना संघ परिवार का पुराना शगल रहा है।

एक तो वोटों की फ़सल काटने के लिए और दूसरा आम मेहनतकश जनता की वर्ग चेतना की धार को भोथरी करने के लिए धर्म, जाति, क्षेत्र, रंग, नस्ल आदि का इस्तेमाल एक आज़मूदा नुस्खा है। यदि हरियाणा का ही उदाहरण लें तो यह बात एकदम साफ़ हो जाती है। जाट आरक्षण की बात नहीं करें तो हरियाणा के तमाम पार्टियों के जाट नेता और खापों के स्वयम्भू चौधरी खुद को बेरोज़गार पाते हैं और राजकुमार सैनी जैसों की ओबीसी वोटबैंक की दुकानदारी तो कायम ही अन्य जातियों के प्रति गाली-गलौच की एक विशिष्ट शैली अपनाने के कारण है। तमाम जातियों के इन ठेकेदारों में से कोई भी यह सवाल नहीं उठाता कि

किसी को भी मौजूदा मुनाफ़ा केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था पर तो सवाल उठाना नहीं है क्योंकि इन्होंने यदि ऐसा कर दिया तो फिर इन्हें कौन पूछेगा? सरकारों के द्वारा जब शिक्षा को महँगा किया जाता है व इसे आम जनता की पहुँच से लगातार दूर किया जाता है और जब सार्वजनिक क्षेत्र ('पब्लिक सेक्टर') की नौकरियों में कटौती करके हर चीज़ का ठेकाकरण किया जाता है तब जातीय ठेकेदार चूं तक नहीं करते! 'रोज़गार ही नहीं होंगे तो आरक्षण मिल भी जायेगा तो होगा क्या?' यह छोटी सी और सीधी-सच्ची बात भूल से भी यदि इनके मुँह से निकल गयी तो इन सभी की प्रासंगिकता ही ख़त्म हो जायेगी इस बात को ये घाघ भलीभान्ति जानते हैं।

आरक्षण को लेकर हुआ इस तरह का हिंसा और सर फुटव्वल का मामला कोई पहला मामला नहीं है। जनवरी माह के अन्तिम दिनों में आन्ध्रप्रदेश के कापु समुदाय के लोग भी आरक्षण के लिए खासा हिंसक आन्दोलन कर चुके हैं। अगस्त 2015 में गुजरात में पटेल समुदाय के लोग भी आरक्षण के मुद्दे पर सड़कों पर थे और इस दौरान भी खूब उत्पात मचा। राजस्थान के गुज्जर भी आरक्षण की 'लड़ाई' में अपने हाथ आजमा चुके हैं। आरक्षण को लेकर उक्त तमाम आन्दोलनों में एक चीज़ जो आम तौर पर दिखायी देती है वह यह है कि ये तमाम जातीय समूह पिछड़ा वर्ग और अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत शिक्षा और खासकर रोज़गार के मामलों में अवसरों की बढ़ोत्तरी के लिए एड़ी-चोटी तक का जौर लगाये हुए थे। एक बात और जो कि गौरतलब है वह यह है कि इनमें से अधिकतर जातियाँ ज़मीन के मालिक किसानों की जातियाँ रही हैं। सम्पूर्णता में अन्य जातियों के साथ तुलना में इनका आर्थिक-सामाजिक रुतबा और राजनीतिक पहुँच खासी मज़बूत रही है और ज़मीन को लेकर दलित जातियों के साथ इनके झगड़ों-टण्टों में इनकी स्थिति आम तौर पर उत्पीड़क की ही रही है। लेकिन सिर्फ़ जातीय आधार पर तुलना करके काम नहीं चल सकता क्योंकि अगर जातियों की भीतरी संरचना पर थोड़ा भी गौर किया जाये तो पता चलेगा कि जाति कोई एकाश्मी चीज़ नहीं है बल्कि इसके अन्दर भी अमीरी-ग़रीबी है, शोषक और शोषित हैं। हर जाति में थोड़े से लोगों का भविष्य तो सुरक्षित है लेकिन बहुसंख्यक आबादी के हालात बेहद खस्ता हैं। आज के रोज़गार विहीन विकास के दौर में सरकारें खुल्लम-खुल्ला 'पूँजीपतियों की प्रबन्धकारिणी समिति' होने का अपना किरदार बखूबी निभा रही हैं। तमाम जातियों की बहुसंख्यक आबादी सस्ती शिक्षा और रोज़गार से महरूम है तथा ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण से परेशान है। ऐसे में व्यवस्था का भला इसी बात में है कि लोग उस पर सवाल न उठायें और आपस में ही उलझे रहें व एक-दूसरे को ही दुश्मन मानते रहें, तमाम जातीय ठेकेदार आरक्षण जैसे मुद्दों को लगातार हवा देकर व्यवस्था की चौकसी ही कर रहे हैं। बहरहाल हम अपनी चर्चा में आरक्षण के लिए हरियाणा में हुए जाट आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं पर बात करेंगे और कुछ आम निष्कर्षों तक पहुँचने का प्रयास करेंगे।

हरियाणा के इतिहास में (यानी 1 नवम्बर 1966 से जबसे हरियाणा प्रदेश बना) इतने बड़े पैमाने पर हिंसा और जातीय विद्वेष पहले कभी नहीं हुआ। अब चूँकि ऊपर से मामला शान्त हुआ लग रहा है तो इस पूरे प्रकरण को लेकर एक-दूसरे समुदाय पर घोर जातीय नज़रिये से आरोप-प्रत्यारोप लगने शुरू हो चुके हैं। गैर जाट इसके लिए केवल जाटों को ज़िम्मेदार ठहराने पर तुले हैं और उनकी तुलना राक्षसों तक से की जा रही है वहीं जाट इसे अपने प्रति राजनीतिक साज़िश करार दे रहे हैं और अन्य पर आरोप लगा रहे हैं कि हिंसा असल में जाटों के नाम पर अन्य जातियों के लोगों ने की है। चुनावी नेता तो हर बार की तरह तू नंगा-तू नंगा के खेल में लगे ही हैं। बुद्धिजीवियों की अलग-अलग राय प्रकट हो रही हैं; कुछ इसे कृषि संकट से उपजी समस्या बता रहे हैं; कुछ का कहना है कि इसके लिए जातीय राजनीति ज़िम्मेदार है और कुछ इतने हतप्रभ रह गये हैं कि अभी तक उक्त घटना ('दुर्घटना') से स्वयं उबर नहीं पाये हैं और "जातीय भाईचारे" की मानवतावादी दलीलें दिये जा रहे हैं। इस पूरे प्रकरण पर मुख्य अन्तरविरोध को पकड़ने और समस्या की असली जड़ तक कम ही लोगों का ध्यान जा रहा है। इस सबके बीच पूँजीवादी व्यवस्था और जाति को वोट बैंक के लिए इस्तेमाल करने की गलीज़ पूँजीवादी राजनीति दामन पर चन्द दागों को लेकर साफ़ बच निकलती प्रतीत हो रही हैं। हरियाणा का रोहतक शहर हिंसा का सबसे प्रमुख केन्द्र रहा था लेकिन यह भी ज्ञात होना चाहिये की यहाँ एकाधिक संसदीय वामपन्थी पार्टियों के बड़े-बड़े कार्यालय भी हैं जो कि लम्बे समय से यहाँ 'कार्यरत' हैं। एक अपनी सबसे बड़ी मज़दूर ट्रेड यूनियन होने का दम भरती है और दूसरी खुद को देश की एक मात्र कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी पार्टी बताती है लेकिन लोगों को वर्ग सचेत बनाने की बजाय लगता है इन्होंने अपना पूरा ध्यान चुनावी चेतना पैदा करने में ही खर्च कर दिया और खेद की बात है इस मामले में भी ये संसदीय, लाल मिर्ची खाने वाले तोते कोई मैदान नहीं मार पाये।

जाति कोई एकाश्मी चीज़ नहीं है बल्कि इसके अन्दर भी अमीरी-ग़रीबी है, शोषक और शोषित हैं। हर जाति में थोड़े से लोगों का भविष्य तो सुरक्षित है लेकिन बहुसंख्यक आबादी के हालात बेहद खस्ता हैं। आज के रोज़गार विहीन विकास के दौर में सरकारें खुल्लम-खुल्ला 'पूँजीपतियों की प्रबन्धकारिणी समिति' होने का अपना किरदार बखूबी निभा रही हैं। तमाम जातियों की बहुसंख्यक आबादी सस्ती शिक्षा और रोज़गार से महरूम है तथा ग़रीबी, भुखमरी, कुपोषण से परेशान है। ऐसे में व्यवस्था का भला इसी बात में है कि लोग उस पर सवाल न उठायें और आपस में ही उलझे रहें व एक-दूसरे को ही दुश्मन मानते रहें...

आज पूरे देश के स्तर पर उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। संसदीय वाम पार्टियों समेत सभी चुनावी पार्टियों की इन नीतियों से पूरी सहमति है; विरोध की नौटंकी केवल विपक्ष में बैठकर ही की जाती है। ऐसे हालात में रोज़गार बढ़ना तो दूर उल्टा 2 प्रतिशत की दर से घट ही रहे हैं। इस स्थिति को रोज़गार विहीन विकास की संज्ञा से नवाज़ा जा रहा है। 2013 के श्रम और रोज़गार मंत्रालय के ही आँकड़ों के मुताबिक देश में 15-24, 18-29 और 15-29 साल के युवाओं के बीच बेरोज़गारी की अनुमानित दर क्रमशः 18.1,13.0 और 13.3 थी। वहीं 15-29 साल के स्नातक ('बी.ए. पास') युवाओं के बेरोज़गारी के आँकड़े और भी भयावह थे जो ग्रामीण क्षेत्रों में 36.4 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 26.5 प्रतिशत अनुमानित किये गये थे। देश में एक-एक भर्ती के पीछे हज़ारों की भीड़ होती है। पिछले दिनों उत्तर प्रदेश की घटना से बेरोज़गारी के आलम का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है जब चपरासी के कुल 368 पदों के लिए 23 लाख से भी अधिक आवेदन पहुँचे थे और अब यह भी हैरानी की बात नहीं होनी चाहिए कि उक्त आवेदनों में से बी.ए., एम.ए., एम.फिल., इन्जीनियरिंग और पीएच.डी. तक किये हुए नौजवान भी बड़ी संख्या में थे। हरियाणा की अगर बात की जाये तो यहाँ बेरोज़गारी में भयंकर बढ़ोत्तरी हुई है। 1966 में हरियाणा के रोज़गार दफ़्तर में 36,522 लोगों के नाम दर्ज थे जबकि 2009 में यह आँकड़ा बढ़कर 9,60,145 हो गया। यह बात भी सहज ही समझी जा सकती है कि इन रोज़गार कार्यालयों (असल में बेरोज़गार कार्यालयों) में वास्तविक संख्या से बेहद कम ही लोग नाम दर्ज कराते हैं क्योंकि उन्हें भली प्रकार से इस बात का पता है कि इससे कुछ होने-जाने वाला नहीं है।

रोज़गार हासिल करने की दुर्दम्य आपाधापी के बीच आरक्षण जैसे मुद्दे तनाव को बढ़ाने में आग में घी का काम करते हैं। अपेक्षाकृत कम अंक ('मैरिट') के बावजूद जब किसी आरक्षित अभ्यार्थी को नौकरी मिल जाती है तो दूसरों को लगता है कि उनके रोज़गार छीनने वाले इसी श्रेणी के उम्मीदवार या विशिष्ट जातियों से आने वाले लोग ही हैं तथा आरक्षित श्रेणी वालों को लगता है कि आरक्षण के लिए कमर कसे हुए लोग दरअसल उनके रोज़गार पर डाका डालने के लिए कमर कसे हुए हैं। यह कोई नहीं सोच पाता कि बेरोज़गारी के असल कारण क्या हैं। जातियाँ एक दूसरे के ख़िलाफ़ दुश्मन के तौर पर खड़ी कर दी जाती हैं। मध्ययुगीन मूल्य-मान्यताओं, घोर जातिवादी नज़रिये के

(पेज 10 पर जारी)

देश काग़ज़ पर बना नक्शा नहीं होता!

(पेज 1 से आगे)

भी आम तौर पर ऐसा माहौल रहा है जिसमें अलग-अलग विचारधाराओं और सोच के लोग अपनी बात कहते रहे हैं, खुली बहसें होती रही हैं और एक-दूसरे से असहमत होते हुए भी परस्पर वाद-विवाद-संवाद चलते रहे हैं। किसी को इसके लिए देशद्रोही नहीं कहा गया। मगर संघी गिरोह पूरे देश को एक ही रंग में रंग देना चाहता है। वे चाहते हैं कि लोग क्या बोलें, क्या सोचें, क्या खायें, क्या पहनें, क्या पसन्द करें – सबकुछ उन्हीं की मर्ज़ी से चले। और ख़ुद संघी कुछ भी करें उस पर कोई सवाल न उठाये। ये उनका पागलपन नहीं है। दरअसल फासिस्ट बड़ी पूँजी के सबसे अच्छे चाकर होते हैं। अगर उनका सपना पूरा हो गया, तो सबसे ज़्यादा ख़ुश देश और दुनिया में बड़ी पूँजी के मालिक होंगे, क्योंकि ऐसे रोबोटों से मनमाफ़िक काम कराना और उन्हें लूटना बहुत आसान हो जायेगा। ये अलग बात है कि उनका ये सपना कभी पूरा नहीं होगा। इनके बाप और ताऊ हिटलर और मुसोलिनी ऐसा ही सपना सच करने चले थे मगर उनका हश्र क्या हुआ? एक ने डरे हुए चूहे की तरह अपनी खन्दक में आत्महत्या कर ली और दूसरे को उसके देश के मज़दूरों ने मारकर सरेबाज़ार उल्टा टाँग दिया था।

लोकलुभावन जुमलेबाजी और ''अच्छे दिनों'' के झूठे सपनों को दिखलाकर भाजपा भले ही केन्द्र की सत्ता पर काबिज़ हो गयी हो, लेकिन पिछले करीब दो साल में एक बात साफ़ हो गयी है कि उसका असली मक़सद पूँजीवाद की डूबती नैया को पार लगाना है। संघ, भाजपा तथा मोदी भी इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि नव-उदारवादी नीतियों ने जिस तरह महँगाई, लगातार कम होती मज़दूरी, बेरोज़गारी और भुखमरी के दानव को खुला छोड़ दिया है उससे त्रस्त जनता एक न एक दिन ज़रूर ही संगठित होकर सड़कों पर उतर आयेगी। इसीलिए साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ताकतें देशभर में सीमित पैमाने के छोटे-बड़े दंगे करवा रही हैं और लगातार साम्प्रदायिक तनाव का माहौल बनाये रखने की कोशिश कर रही हैं।

फासीवाद जनता के सामने हमेशा एक झूठा दुश्मन खड़ा करता है ताकि अपनी बदहाली से परेशान जनता के गुस्से को उस झूठे दुश्मन के विरुद्ध मोड़कर असली कारणों से ध्यान बहकाया जा सके। धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ ही प्रगतिशील ताक़तें हमेशा उसके निशाने पर रहती हैं। अन्धराष्ट्रवाद का हथियार उसके बड़े काम आता है। मज़दूरों और मेहनतकशों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी होगी कि फ़ासीवाद पूँजीपति वर्ग की सेवा करता है। साम्प्रदायिक फ़ासीवाद की राजनीति झूठा प्रचार या दुष्प्रचार करके सबसे पहले एक नकली दुश्मन को खड़ा करती है ताकि मज़दूरो-मेहनकशों का शोषण करने वाले असली दुश्मन यानी पूँजीपति वर्ग को जनता के गुस्से से बचाया जा सके। ये लोग न सिर्फ़ मज़दूरों के दुश्मन हैं बल्कि आम तौर पर देखा जाये तो ये पूरे समाज के भी दुश्मन हैं। इनका मुक़ाबला करने के लिए मेहनतकश वर्गों को न सिर्फ़ अपने वर्ग हितों की रक्षा के लिए एकजुट होकर पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ एक सुनियोजित लम्बी लड़ाई लड़ने की शुरुआत करनी होगी, बल्कि साथ ही साथ महँगाई, बेरोज़गारी, महिलाओं की बराबरी तथा जाति और धर्म की कट्टरता के खिलाफ़ भी जनता को जागरूक करना होगा।

यह पूँजीवादी व्यवस्था अन्दर से सड़ चुकी है, और इसी सड़ाँध से पूरी दुनिया के पूँजीवादी समाजों में हिटलर-मुसोलिनी के वारिस पैदा हो रहे हैं। फासिस्ट पूँजीवादी लोकतंत्र तक को नहीं मानते और उसे पूरी तरह रस्मी बना देते हैं और वास्तव में पूँजी की नंगी, खुली तानाशाही स्थापित करना चाहते हैं। फासिस्ट धर्म या नस्ल के आधार पर आम जनता को बाँट देते हैं, वे नक़ली राष्ट्रभक्ति के उन्मादी जुनून में हक़ की लड़ाई की हर आवाज़ को दबाना चाहते हैं, वे धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यकों को निशाना बनाकर एक नक़ली लड़ाई से असली लड़ाई को पीछे कर देते हैं, पूरे देश में दंगों और ख़ून-खराबों का विनाशकारी खेल शुरू कर देते हैं। पूँजीपति वर्ग अपने संकटों से निजात पाने के लिए फासिज़्म को संगठित करता है और ज़ंजीर से बँधे कुत्ते की तरह उसका इस्तेमाल करना चाहता है, लेकिन जब-तब यह कुत्ता अपनी ज़ंजीर छुड़ा भी लेता है और तब समाज में भयंकर ख़ूनी उत्पात मचाता है। हमारे देश में पिछले पच्चीस छब्बीस वर्षों से कभी मंदिर-निर्माण, कभी लव-जेहाद, कभी गाय तो कभी तथाकथित देशद्रोह बनाम देशप्रेम के नाम पर जारी यह उत्पात बढ़ता हुआ पूरे देश को एक ख़ूनी दलदल की ओर धकेलता जा रहा है। धर्म, नक़ली देशप्रेम और तमाम फ़र्ज़ी मुक़दमों को उभाड़कर पूँजीवादी लूट, पुलिसिया दमन, बेदख़ली, बेरोज़गारी, महँगाई, भयंकर सूखा जैसे नब्बे फ़ीसदी लोगों की ज़िन्दगी के बुनियादी मुद्दों को पीछे धकेल दिया गया है और सरकार की वायदा-खिलाफ़ियों पर परदा डाल दिया गया है। जिन्हें मिलकर दस फ़ीसदी लुटेरों से लड़ना है, वे आपस में ही एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जायें, इसी के लिए तमाम हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं।

आज देश ही नहीं, पूरी दुनिया में फासिस्ट ताक़तें सिर उठा रही हैं। अमेरिका के इतिहास में पहली बार डोनाल्ड ट्रम्प जैसा व्यक्ति राष्ट्रपति पद का प्रमुख उम्मीदवार बनने जा रहा है जो साध्वी प्राची और आदित्यनाथ जैसे लोगों की भाषा में मुसलमानों के विरुद्ध बयानबाज़ियाँ करता है। भारत में भी फासीवाद के उभार का सीधा सम्बन्ध पूँजीवाद के गहराते संकट से है। नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों को जितनी नंगई और कुशलता के साथ मोदी ने लागू करना शुरू किया उसके कारण बड़े-बड़े पूँजीपति घराने, बैंक, हथियारों के सौदागर, देश के तेल और गैस पर क़ब्ज़ा जमाये अम्बानी और अडाणी जैसे धनपशु, फिक्की, एसोचैम जैसी संस्थाएँ तथा मध्य वर्ग के लोग मोदी की शान में क़सीदे पढ़ रहे थे। मगर संकट की चपेट ऐसी है कि जनता को बुरी तरह निचोड़कर भी मोदी सरकार अपने आकाओं के घटते मुनाफ़े को बढ़ा नहीं पा रही है। ऐसे में कई पूँजीपति घरानों का धैर्य भी जवाब दे रहा है। टाटा घराने की करीब 100 कम्पनियों में से सॉफ्टवेयर कम्पनी टीसीएस को छोड़ लगभग सभी घाटे में चल रही हैं। करीब एक दशक पहले टाटा ने बड़े ज़ोर-शोर से ब्रिटिश स्टील कम्पनी कोरस का अधिग्रहण किया था। अब 'टाटा स्टील यूरोप' बन्द होने वाली है और 17,000 मज़दूर व कर्मचारी बेरोज़गार होने वाले हैं। यही हाल पूरी पूँजीवादी व्यवस्था का है। पूँजीवादी दुनिया के तमाम महारथी मन्दी के चक्रव्यूह से अर्थव्यवस्था को निकालने में नाकाम हैं, तमाम वैद्य-हकीमों के नुस्खे बेकार गये हैं। मेहनतकश जनता को और भी बुरी तरह लूटकर पूँजीपतियों को तमाम तरह की छूटें देने के बाद भी उनका संकट दूर नहीं हो पा रहा है। सैकड़ों करोड़ रुपये मोदी की विदेश यात्राओं पर खर्च करने और विदेशी लुटेरों को सारी सुविधाएँ देने के वायदों के बावजूद विदेशी पूँजी भी नहीं आ रही है। टाटा ही नहीं, ज़्यादातर औद्योगिक घरानों का मुनाफ़ा घट रहा है। मुनाफ़े में सिर्फ़ अंबानी-अडाणी जैसे कुछ घराने हैं जो मोदी सरकार से मिले तोहफ़ों की बदौलत तमाम तरह के घपलों-घोटालों से कमाई कर रहे हैं।

दूसरी ओर, बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी से तबाह आम जनता ठगी हुई महसूस कर रही है और चारों ओर से विरोध के स्वर उठ रहे हैं। दिल्ली, गुड़गाँव, लुधियाना और गुजरात से लेकर देश के अनेक औद्योगिक इलाक़ों में मज़दूर अपनी माँगों को लेकर सड़कों पर उतर रहे हैं और उन्हें बदले में सिर्फ़ लाठियाँ मिल रही हैं। सरकारी विभागों से टुकड़ों-टुकड़ों में छँटनी जारी है और नयी नियमित भर्तियाँ नाममात्र की रह गयी हैं। निजी क्षेत्र में रोज़गार के अवसर बढ़ने की रफ़्तार लगातार घटी रही है और आम लोगों के लिए जो रोज़गार हैं भी उनमें बेहद कम वेतन पर भयंकर शोषण और अनिश्चितता है। खाने-पीने की चीज़ों में तो पहले से आग लगी हुई थी, दवा-इलाज से लेकर शिक्षा, यातायात और मकानों के किराये तक में भारी बढ़ोत्तरी हो चुकी है। मनरेगा जैसी योजनाओं के बजट में भारी कटौती के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में ग़रीबों को मिलने वाली थोड़ी बहुत राहत भी नहीं मिल पा रही है। बड़े पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने वाली नीतियों के कारण खेती संकट में है जिसकी मार से ग़रीब किसान उजड़ और बर्बाद हो रहे हैं। ऐसे में जनता का सब्र बहुत दिनों तक नहीं बना रहेगा।

निश्चय ही फासीवादी माहौल में क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार एवं संगठन के कामों का बुर्जुआ जनवादी स्पेस और भी सिकुड़ जायेगा, लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह होगा कि नवउदारवादी नीतियों के बेरोकटोक और तेज़ अमल तथा हर प्रतिरोध को कुचलने की कोशिशों के चलते पूँजीवादी ढाँचे के सभी अन्तरविरोध उग्र से उग्रतर होते चले जायेंगे। मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता रीढ़विहीन ग़ुलामों की तरह सबकुछ झेलती नहीं रहेगी। देश के छात्र-नौजवान चुपचाप सहते नहीं रहेंगे। आने वाले दिनों में व्यापक मज़दूर उभारों की परिस्थितियाँ तैयार होंगी। छात्रों-नौजवानों को भी यह समझना होगा कि उनकी लड़ाई मेहनतकशों को अपने साथ लिये बिना आगे नहीं बढ़ सकती। उन्हें फासिस्टों का भण्डाफोड़ करने और उनके मज़दूर-विरोधी चरित्र के बारे में मेहनतकश जनता को जागरूक करने के लिए उनके बीच जाना होगा। यदि इन्हें नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी शक्तियाँ तैयार रहेंगी और साहस के साथ ऐसे उभारों में शामिल होकर उनकी अगुवाई अपने हाथ में लेंगी तो क्रान्तिकारी संकट की उन सम्भावित परिस्थितियों का बेहतर से बेहतर इस्तेमाल करके संघर्ष को व्यापक बनाने और सही दिशा देने का काम किया जा सकेगा। अपने देश में और और पूरी दुनिया में बुर्जुआ जनवाद का क्षरण और नव फासीवादी ताक़तों का उभार दूरगामी तौर पर नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं के विस्फोट की दिशा में भी संकेत कर रहा है।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों के उत्पात का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन और मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमख़म रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर इस सवाल पर एकजुट होकर इनसे लड़ना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मज़दूर वर्ग की फौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। हमें अपनी भरपूर ताक़त के साथ इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए। अगर हम एकजुट होकर इन्हें इतिहास के कूड़ेदान में धकेलने के लिए संघर्ष नहीं छेड़ेंगे तो वे इस मुल्क को आग और ख़ून के दलदल में तब्दील कर डालेंगे क्योंकि वे लगातार अपने काम में लगे हुए हैं।

पूँजीवाद का संकट गहराने के साथ ही दुनियाभर में फासीवादी ताक़तें सिर उठा रही हैं। भारत में आरएसएस, मिस्र में मुस्लिम ब्रदरहुड, जर्मनी में नव-नाज़ी गुट, फ्रांस में नेशनल फ्रंट, इटली में मुसोलिनी-भक्त नव-फासीवादी गुट, ग्रीस में गोल्डन डॉन... फ़ेहरिस्त लम्बी है...

झूठी देशभक्ति और राष्ट्रवाद की चाशनी में डूबा संघी आतंक और फ़ासीवाद!

इस देश के मज़दूरों, किसानों और आम जनता के लिए आज दो जून की रोटी तक का इंतज़ाम कर पाना मुश्किल है ऐसे में मोदी के अच्छे दिनों के फुलाये गुब्बारे की हवा निकलते देख कर अब संघ के इशारों पर चलने वाली सरकार ने अपने हिंदुत्व के एजेंडा को और आगे बढ़ाते हुए झूठे राष्ट्रवाद और देशभक्ति की नौटंकी पहले से भी तेज़ कर दी है। दादरी हत्याकांड हो या हरियाणा में दलित बच्चों की हत्या, हैदराबाद विश्वविद्यालय के एक दलित छात्र की सांस्थानिक हत्या, छात्रों पर बर्बर दमन, सोनी सोरी पर हमला इन सब मुद्दों पर चुप्पी साधे बैठी मोदी सरकार और भाजपा-संघ के लोग जनता का ध्यान मूल मुद्दों से भटकाने के लिए अब हर उस व्यक्ति को देशद्रोही और राष्ट्रविरोधी घोषित कर रहे हैं जो इनकी नीतियों और राजनीति पर सवाल उठाता है। जहाँ भी मज़दूर अपने हक़-अधिकारों के लिए आवाज़ उठा रहे है उनपर बर्बर पुलिसिया दमन कर यह सरकार उन्हें भी राष्ट्रविरोधी घोषित कर रही है, चाहे वे होंडा के मज़दूर हों जो यूनियन बनाने के अपने संवैधानिक अधिकार के लिए संघर्षरत हों या फिर टेक्सटाइल उद्योग में काम कर रही महिला मज़दूर हों। आज जो भी व्यक्ति तार्किकता की बात करता है, न्याय की बात करता है और सरकार की किसी भी नीति पर सवाल उठाता है उसे तुरंत देशद्रोही घोषित कर दिया जाता है।

आज जब महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी आसमान छू रही है तो राष्ट्र के निर्माण के लिए गरीब मेहनतकाश जनता से कुर्बानी करने का आह्वान किया जा रहा है, और दूसरी ओर देश के पूँजीपतियों का हज़ारों करोड़ों रुपयों का टैक्स और बैंक का कर्ज़ माफ़ किया जा रहा है। हाल ही में दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र संघ के अध्यक्ष को यह कह कर देशद्रोही घोषित कर दिया गया कि उसने भारत के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी की। उसके ऊपर 'राजद्रोह' के कानून के तहत एफ.आई.आर दर्ज की गयी और उसे हिरासत में लिया गया। बिना किसी ठोस सबूत के एक छात्र को जेल में डाल दिया जाता है और फिर मीडिया के तंत्र के ज़रिये उसे एक देशद्रोही घोषित कर दिया जाता है। संघी गुंडे सरे आम छात्रों, अध्यापकों, पत्रकारों को पीटते हैं, यहाँ तक कि इस देश के न्यायलय के भीतर घुसकर मारपीट करते हैं। मगर उनके ख़िलाफ़ पुख्ता सबूत होने के बावजूद कोई कार्रवाई नहीं की जाती। राजद्रोह के कानून को देशद्रोह में तब्दील कर दिया जाता है, यह वही कानून है जो अंग्रेजी हुकूमत के समय भगत सिंह और उनके साथियों पर लगाकर उन्हें आतंकी घोषित किया गया था।

बहरहाल यहाँ मुख्य मुद्दा यह है कि किस तरह शातिराना तरीके से सरकार की नीतियों पर सवाल उठाने को आज देशद्रोह में तब्दील कर दिया गया है। भारत एक लोकतान्त्रिक देश है जो सबको अपनी बात कहने और अभिव्यक्ति की आज़ादी देता है, यह हमारे संवैधानिक अधिकारों में शामिल है तो फिर आज किस तरह इस अभिव्यक्ति की आज़ादी को कुचलकर हमे 'मोदी की जय' बोलने वालें भक्तों या फिर देशद्रोहियों में तब्दील किया जा रहा है।

खुद को सच्चे देशभक्त बताने वाली भाजपा और आर.एस.एस. के इतिहास पर नज़र दौड़ाते ही यह मालूम हो जाता है कि आज भारत माता की जय के नारे लगाने वालों इन भारत माँ के "शेरों" का भूतकाल इन्हें भूत की तरह क्यों सताता है और क्यों ये अब इतिहास की किताबों से इन्हें शर्मसार करने वाली घटनाओं को मिटाने की कवायद कर रहे हैं। भाजपा की वैचारिक और राजनीतिक जननी आर.एस.एस. का इतिहास अंग्रेज़ी हुकूमत के तलवे चाटने, क्रांतिकारियों की मुखबिरी करने और अंग्रेज़ों के प्रति अपनी प्रतिबद्धत्ता का प्रमाण देते हुए माफ़ीनामे लिखने का रहा है, चाहे इनके 'वीर सावरकर' हों या फिर वाजपेयी। इनके द्वारा लिखे गये माफ़ीनामे जगजाहिर हैं। जहाँ तक बात इनके "राष्ट्रवादी" होने की है, तो भारतीय स्वतन्त्र संग्राम के इतिहास पर नज़र डालते ही समझ में आ जाता है कि यह एक बुरे राजनीतिक चुटकुले से ज़्यादा और कुछ भी नहीं है। संघ के किसी भी नेता ने कभी भी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ अपना मुँह नहीं खोला। जब भी संघी किसी कारण पकड़े गये तो उन्होंने बिना किसी हिचक के माफ़ीनामे लिख कर, अंग्रेजी हुकूमत के प्रति अपनी वफ़ादारी साबित की। स्वयं पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी यही काम किया था। संघ ने किसी भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में हिस्सा नहीं लिया। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान संघ ने उसका बहिष्कार किया। संघ ने हमेशा ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी वफ़ादारी बनाये रखी और देश में साम्प्रदायिकता फैलाने का अपना काम बखूबी किया। वास्तव में साम्प्रदायिकता फैलाने की पूरी साज़िश तो ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के ही दिमाग़ की पैदावार थी और 'बाँटो और राज करो' की उनकी नीति का हिस्सा थी। लिहाज़ा, संघ के इस काम से उपनिवेशवादियों को भी कभी कोई समस्या नहीं थी। ब्रिटिश उपनिवेशवादी राज्य ने भी इसी वफ़ादारी का बदला चुकाया और हिन्दू साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों को कभी अपना निशाना नहीं बनाया। आर.एस.एस. ने हिन्दुत्व के अपने प्रचार से सिर्फ़ और सिर्फ़ साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ हो रहे देशव्यापी आन्दोलन से उपजी कौमी एकजुटता को तोड़ने का प्रयास किया। जब 1942 में सारे देश की जनता अंग्रेज़ों भारत छोड़ो के नारे के साथ सड़कों पर थी तो हिन्दू महासभा कई राज्यों में मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार चला रही थी।

ग़ौरतलब है कि अपने साम्प्रदायिक प्रचार के निशाने पर आर.एस.एस. ने हमेशा मुसलमानों, कम्युनिस्टों और ट्रेड यूनियन नेताओं को रखा और ब्रिटिश शासन की सेवा में तत्पर रहे। संघ कभी भी ब्रिटिश शासन-विरोधी नहीं था, यह बात गोलवलकर के 8 जून, 1942 में आर.एस.एस. के नागपुर हेडक्वार्टर पर दिए गये भाषण से साफ़ हो जाती है – "संघ किसी भी व्यक्ति को समाज के वर्तमान संकट के लिये ज़िम्मेदार नहीं ठहराना चाहता। जब लोग दूसरों पर दोष मढ़ते हैं तो असल में यह उनके अन्दर की कमज़ोरी होती है। शक्तिहीन पर होने वाले अन्याय के लिये शक्तिशाली को ज़िम्मेदार ठहराना व्यर्थ है।...जब हम यह जानते हैं कि छोटी मछलियाँ बड़ी मछलियों का भोजन बनती हैं तो बड़ी मछली को ज़िम्मेदार ठहराना सरासर बेवकूफ़ी है। प्रकृति का नियम चाहे अच्छा हो या बुरा सभी के लिये सदा सत्य होता है। केवल इस नियम को अन्यायपूर्ण कह देने से यह बदल नहीं जायेगा।"

आज जिस वीर सावरकर को हिन्दू महासभा भारत रत्न दिलवाना चाहती है उसी सावरकर ने ब्रिटिश राज से कालापानी की सज़ा दिये जाने के 2 महीने के बाद से ही सज़ा माफ़ी के लिए दया याचना लिखना शुरू कर दिया था। अपनी कई भेजी गयी दया याचनाओं में से एक में सावरकर ने साफ़-साफ़ शब्दों में अंग्रेज़ों के प्रति अपनी वफ़ादारी दिखाते हुए लिखा था "मैं सरकार की जिस रूप में वह चाहे सेवा करने के लिए तैयार हूँ"। इतना ही नहीं आगे उन्होंने यह भी लिखा कि क्षमा करना ताकत और करुणा की निशानी है और ऐसे में भारत का यह बेटा सरकार के दरवाज़े के अलावा और कहाँ गुहार लगाये।

भाजपा के अध्यक्ष अमित शाह ने पिछले साल अपनी आधिकारिक वेबसाइट शुरू करने के पश्चात अपना पहला लेख सावरकर को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा। भाजपा के नकली देशभक्तों की फेहरिस्त तो बेहद लम्बी है मगर उनमे से एक जो सबसे कुख्यात है वो है नाथूराम गोडसे। नाथूराम गोडसे जिसने महात्मा गांधी की हत्या की, आर.एस.एस. और हिन्दू महासभा के लिए वह 'भारत का असली शूरवीर है' और 15 नवंबर जिस दिन नाथूराम गोडसे को फांसी दी गयी थी उस दिन को संघी बलिदान दिवस के रूप में मनाते हैं। पिछले साल 15 नवंबर को बाकायदा नाथूराम गोडसे को समर्पित एक वेबसाइट का उद्घाटन किया गया जिसके पहले पन्ने पर भगवा रंग से लिखा है 'भारत का भुला दिया गया असली नायक'। भगत सिंह और उनके क्रांतिकारी साथियों की मुखबिरी करने में भी संघ ने कोई कमी नहीं छोड़ी। जिस गणतंत्र दिवस पर प्रधानमंत्री लाल किले से भाषण देते हैं उसी गणतंत्र दिवस को संघ से जुड़े लोग काले दिवस के रूप में मनाते हैं। संघ और उसके कुकृत्यों की फ़ेहरिस्त इतनी लम्बी है कि उसके बारे में कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। मगर इन सभी प्रतिनिधिक उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि देश भक्ति से इनका दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं है। मोदी के 'अच्छे दिनों' की तरह देशभक्ति भी इनकी नौटंकी का ही हिस्सा है। पूँजीवादी व्यवस्था के संकट ने फ़ासीवाद के लिए जो ज़मीन तैयार की उसी के चलते आज भारत में भाजपा के रूप में फ़ासीवाद का उभार हुआ है। और जिस तरह फ़ासीवाद हर हमेशा नस्ल, रंग, जाति, धर्म के नाम पर लोगों को बाँटता है ठीक उसी प्रकार आज भारत में धर्म के नाम पर लोगों को बाँटा जा रहा है, ताकि आम जनता का और बर्बर रूप से शोषण किया जा सके। जब लोग आपस में धर्म के नाम पर, राष्ट्र के नाम पर एक दूसरे को देशद्रोही कह कर काट रहे होंगे तो ये फ़ासीवादी अपने आकाओं अम्बानी, अडाणी की तिजोरियाँ भरने के लिए मज़दूरों का और नंगे रूप से दमन कर सकेंगे। इतिहास में हिटलर, मुसोलिनी की फ़ासीवादी सरकारों ने भी ठीक इसी तरह लोगों को बाँटकर लाखों लोगों को फ़ासीवाद के गिलोटिन पर मौत के घाट उतारा था। चाहे ये संघी अपने काले इतिहास पर पर्दा डाल रहे हों मगर हमें, आम मेहनतकश जनता को यह समझना होगा कि इनकी इस संकीर्ण राजनीति के पीछे इनके असली मन्सूबे कितने मानवद्रोही हैं। और इन फ़ासीवादी ताकतों का सामना करने के लिए हमें एकजुट होने की तैयारी करनी होगी।

– सिमरन

जनता के सच्चे नायकों और फासीवादियों में अन्तर

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

– भगतसिंह

(साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज)

ये देखिये, मोदी के गुरुजी के विचार क्या थे...

"हिन्दुओ, ब्रिटिश से लड़ने में अपनी ताक़त बर्बाद मत करो। अपनी ताक़त हमारे भीतरी दुश्मनों यानी मुसलमानों, ईसाइयों और कम्युनिस्टों से लड़ने के लिए बचाकर रखो।"

– एम.एस. गोलवलकर
(आर.एस.एस. के दूसरे सरसंघचालक)

'वी, ऑर अवर नेशनहुड डिफ़ाइंड' पुस्तक से

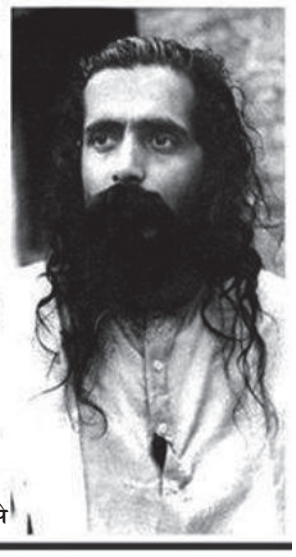

आरक्षण आन्दोलन, रोज़गार की लड़ाई और वर्ग चेतना का सवाल

(पेज 7 से आगे)

कारण यह भी कोई नहीं सोच पाता कि कितने पद तो आरक्षित श्रेणियों के बीच के भी खाली पड़े रह जाते हैं क्योंकि दलित और पिछड़ी जातियों का बड़ा हिस्सा शिक्षा और रोज़गार की दौड़ में पहले ही पिछड़ा हुआ है। 2007-08 के ही एक आँकड़े के अनुसार कुल युवा आबादी में से केवल 7 फ़ीसदी ही उच्च शिक्षा तक पहुँच पाते हैं। दूसरी और पारम्परिक तौर पर कृषि से जुड़ी जातियों की बड़ी आबादी की कृषि के प्रति स्थिति साँप-छछून्दर वाली हो गयी है। ये खेती को छोड़ें तो तो सामने बेरोज़गारी का दानव और करें तो भी गुज़ारा नहीं। 2005-06 की कृषि गणना के अनुसार ही हरियाणा में 67 प्रतिशत भूमि मालिकों के पास 2 हेक्टेयर से कम भूमि थी और 47.67 प्रतिशत के पास तो एक हेक्टेयर से भी कम कृषि भूमि थी। पशुपालन पर आश्रित लोगों की अर्थव्यवस्था भी सामूहिक चरागाहों के ख़त्म होते जाने के कारण संकट में है। कुल मिलाकर छोटे पैमाने की कृषि और पशुपालन दोनों ही घाटे का सौदा हो चुके हैं। तेज़ी से छोटी हो रही जोत और संसाधनों में हो रही सिकुड़न किसान जातियों की इस बड़ी आबादी में असुरक्षा को लगातार बढ़ावा देती है।

जातियों के आपसी संघर्ष के पलीते में चिंगारी देने का काम करते हैं तमाम वोटों के व्यापारी। बेरोज़गारी के इन भयानक हालात में जातियों का रहनुमा बनने वाला न तो कोई चुनावी नेता और न ही कोई खाप का चौधरी अपने मुखारविन्द से बेरोज़गारी के ख़िलाफ़ सरकारों की नीतियों के विरोध में कोई बोल-वचन निकालता है और न ही इन हालात से उनके निजी जीवन में कोई फ़र्क पड़ता है क्योंकि अधिकतर के पास बेशुमार दौलत या ज़मीन-जायदाद है। इनमें से अधिकतर के सपूत-कपूत या तो विदेशों में पढ़ाई करते हैं या फ़िर वोट की राजनीति में ही लगे हुए हैं। आरक्षण के लिए होने वाले जातीय संघर्षों में दो तरह के लोग बड़ी ही आसानी से देखे जा सकते हैं –एक तो कीमती गाड़ियों का इस्तेमाल करने वाले और ऐशो-आराम की ज़िन्दगी जीने वाले बड़े-बड़े पग्गड़धारी और सफ़ेदपोश और दूसरी तरफ़ ट्रैक्टर-ट्रालियों में फरसों, गण्डासों, जेळी, डण्डों और जातीय नफ़रत की आग से लैस ग़रीब किसान आबादी जिसका एक हिस्सा लगातार बढ़ रही बेरोज़गारी और ग़रीबी के संकट के चलते लम्पट भी हो चुका होता है। आरक्षण के टुकड़ों पर लड़ने के लिए और एक-दूसरे का खून बहाने के लिए रह जाते हैं तमाम जातियों के मेहनतकश लोग। स्थिति जब जातीय हिंसा का रूप ले चुकी होती है तो आरक्षण का मुद्दा पीछे हो जाता है और चौधराहट का और एक दूसरे को नीचा दिखाने का मसला आगे आ जाता है, लड़ने वाले बहुत से लोगों को तो यह तक नहीं पता होता कि असल में उनकी माँग क्या है?

आज के समय किसानों-मज़दूरों और आम मेहनतकश जनता को वर्गीय आधार पर भाईचारे की ज़रूरत पर संजीदगी के साथ सोचना होगा क्योंकि यही आज हमारे अस्तित्व की शर्त भी है। आपसी जूतम-पैजार को छोड़कर हम सबके दुश्मन को पहचानना ही होगा। रोज़गार के मसले को लेकर हम ज़रा भी दिमाग पर जोर डालें तो बड़ी आसानी से निचोड़ तक पहुँच सकते हैं यानी सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ों की आवश्यकता होती है: 1. काम करने वाले हाथ, 2. विकास की सम्भावनाएँ, 3. प्राकृतिक संसाधन। इन तीनों चीज़ों का ही हमारे यहाँ पर कोई टोटा नहीं है। करोड़ों लोग बेरोज़गार हैं जिनमें पढ़े लिखों की भी भारी संख्या है, देश की आज़ादी के क़रीब 69 साल बाद भी लोग बुनियादी ज़रूरतों से महरूम हैं जिन्हें पूरा करने के लिए विकास के ढेरों काम करने को पड़े हैं। और न ही हमारी इस शस्य श्यामला और खनिजों से भरपूर, सदानीरा जीवनदायिनी नदियों से युक्त धरती पर प्राकृतिक संसाधनों की ही कमी है। बस दिक्कत एक चीज़ की है और वो है मौजूदा व्यवस्था का निजी मुनाफ़े पर आधारित होना। इस व्यवस्था में विकास का मतलब लोगों की ज़रूरतें पूरी करना और सभी को सम्मानजनक रोज़गार देना नहीं है बल्कि मुट्ठीभर अमीरों के लिए मुनाफ़ा पैदा करना है। यहाँ पर "सम्पत्ति का अधिकार" को तो मौलिक अधिकार का दर्जा मिला हुआ है लेकिन रोज़गार मौलिक अधिकार नहीं माना जाता। सरकारें सीधे तौर पर बड़े-बड़े धन्नासेठों की सेवा में ही काम करती हैं और लोगों को धर्म, जाति, रंग, नस्ल आदि के नाम पर बाँट दिया जाता है। इस तरह के तमाम झगड़ों और हिंसा की वारदातों से मेहनतकश जनता को कुछ मिलना तो दूर उल्टा उससे छिन ज़रूर जाता है। असल सवाल तो पूरी व्यवस्था में ही आमूलचूल बदलाव करके एक शोषण विहीन समाज के निर्माण का है। बेशक यह मंज़िल दूर है, रास्ता लम्बा है और व्यापक वर्गीय लामबन्दी की माँग करता है लेकिन मेहनतकश जनता की मुक्ति इसी रास्ते से सम्भव है। लेकिन तब तक हाथ पर हाथ धरने से काम नहीं चलेगा बल्कि रोज़गार, शिक्षा, बिजली, पानी, स्वास्थ्य आदि जैसी समस्याओं को एकजुटता के साथ उठाना होगा जो किसी एक जाति या धर्म की नहीं बल्कि सभी की समस्याएँ हैं। जातिवाद की दीवारें न तो 'भाईचारा टूट गया' कहकर सुयापा करने से ढहेंगी और न ही 36 बिरादरी की एकता कायम करने की मानवतावादी-भावनात्मक अपील से इन जाति की दीवारों को कमज़ोर किया जा सकता है। तमाम जातियों के लोगों की एकता साझा मुद्दों के आधार पर ही कायम हो सकती है यह सीधी सी बात हमें गाँठ बाँध लेनी चाहिए। हरियाणा के इतिहास में जब भी लोग साझे संघर्षों के लिए लड़े थे तो उनके मुद्दे भी साझा ही थे चाहे वह समय सल्तनत काल का रहा हो, चाहे फिर मुग़ल काल का किसान विद्रोहों का समय रहा हो या फिर 1857 से लेकर 1947 तक ओपनिवेशिक गुलामी के ख़िलाफ़ हरियाणा की जनता का साझा संघर्ष हो। ज़ाहिर सी बात है साझा संघर्षों के दौरों में ही जातीय बेड़ियाँ भी कमज़ोर होती हैं। वर्ना तो 36 बिरादरियों का भाईचारा एक मिथक से अधिक कुछ नहीं है। असल में इन बिरादरियों में इतना ही भाईचारा और प्यार-प्रेम रहा होता तो वे 36 बिरादरी की बजाय एक ही बिरादरी नहीं होतीं? बेशक जातिवाद की मानसिकता को भी संघर्ष की प्रक्रिया में ही तोड़ा और कमज़ोर किया जा सकता है और आपसी मित्रतापूर्ण अन्तरविरोधों को भी आसानी से हल किया जा सकता है।

देश की तरह ही हरियाणा प्रदेश की जनता को भी यह बात समझनी होगी की हर जाति में मुट्ठीभर ऐसी आबादी है जो किसी भी तरह की प्रत्यक्ष उत्पादन की कार्रवाई में भागीदारी नहीं करती केवल पैदावार का बड़ा हिस्सा हड़प लेती है, और बहुसंख्या में ऐसी आबादी है जो अपनी खून-पसीने की मेहनत के बूते देश की हर सम्पदा का सृजन करती है। शोषक जमात के हित मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के साथ जुड़े होते हैं क्योंकि तमाम संसाधनों पर इनका नियंत्रण होता है जबकि मेहनतकश आवाम को इस व्यवस्था में अपनी हड्डियाँ गलाने के बावजूद केवल बेरोज़गारी, ग़रीबी, मुफ़लिसी और कुपोषण ही नसीब होते हैं। 35 बिरादरी बनाम एक बिरादरी के झगड़े में हमें नहीं पड़ना है क्योंकि असल में किसी भी समाज में दो ही बिरादरी होती हैं एक वो जो खुद मेहनत करती है और अपनी श्रम शक्ति को पूँजी के मालिकों के हाथों बेचने पर मजबूर होती है और दूसरी वह जो दूसरों की मेहनत पर जोंक की तरह पलती है। ग़रीब और मेहनतकश आबादी को वर्गीय आधार पर अपनी एकजुटता क़ायम करनी पड़ेगी। तभी एक ऐसे समाज की लड़ाई सफल हो सकेगी जिसमें हर हाथ को काम और हर व्यक्ति को सम्मान के साथ जीने का अधिकार मिलेगा।

– अरविन्द राठी

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।

– भगतसिंह

('साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख से)

मुनाफ़े की अन्धी हवस में हादसों में मरते मजदूर

पिछली 25-28 फरवरी के बीच रूस की राजधानी मास्को से 1600 कि.मी. उत्तर-पूर्व में स्थित कोमी प्रान्त की सेवेरनाया कोयला खदान में विस्फोट होने से तकरीबन 36 मज़दूर मारे गये।| मरने वालों की उम्र 24 से 55 साल के बीच बताई गयी है। घटनास्थल पर पहुंचे रूसी उप-प्रधान मंत्री आर्केडी द्वोरकोविच और कंपनी मैनेजर के अनुसार यह हादसा प्राकृतिक कारणों की वजह से हुआ। द्वोरकोविच के मुताबिक सरकारी जांच में पाया गया है कि खान में मीथेन गैस का स्तर खतरे के स्तर से नीचे था, इसीलिए कारण के तौर पर कंपनी की ओर से चूक का होना नज़र नहीं आ रहा। लेकिन इस तरह के विस्फोटों के मामले एक विशेषज्ञ अलेक्सांद्र गेरुसोव के अनुसार यदि सारे सुरक्षा प्रबंध सही काम कर रहे हों तो हादसों की संभावना शून्य हो सकती है। उनके मुताबिक, 90% खान हादसे व्यवस्था में किसी गड़बड़ी के कारण होते हैं।

हादसे में मारे गये मज़दूरों के परिवार वाले और बचे हुए मज़दूर इन सरकारी दावों को सही नहीं मानते। एक मजदूर जो उन दिनों छुट्टी पर था उसका कहना था, "हर कोई जानता है कि पिछले कुछ महीनों से उस जगह पर मीथेन गैस की भारी मात्रा इकट्ठा हो चुकी थी लेकिन कंपनी प्रशासन की ओर से इसके बारे में कुछ नहीं किया गया।"

मारे गये एक मजदूर की बेटी दारिया तरियासुखो ने इंटरनेट पर हादसे से 2 हफ्ते पहले डाली एक फोटो से दिखाया कि मीथेन गैस का स्तर 2.5 था जबकि रूसी पैमानों के अनुसार यदि यह स्तर 1 से ऊपर हो जाये तो खतरे के दायरे में माना जाता है। इसी मज़दूर की पत्नी ने बताया, "हादसे से कुछ ही दिन पहले मेरे पति ने बताया था कि चट्टान फटने का खतरा है। हवा में गैस का स्तर बेहद ज्यादा था लेकिन प्रशासन ने गैस सुरक्षा संयन्त्रों को काम करने से रोकने के लिए हर प्रयास किये थे। उन्होंने सयन्त्रों को लपेट कर दबा दिया था। उन्होंने ऐसा इसीलिए किया था क्योंकि पूरा प्रबंध स्वचालित था और जब सेंसर चालु हो जाते थे तो काम अपने-आप बंद हो जाता था। उनको सिर्फ पैदावार चाहिए थी और कुछ नहीं, सुरक्षा को लेकर कोई भी चिंतित नहीं थी। "

सेवेरनाया के एक और नागरिक माडलेना ने बताया कि पिछले कुछ हफ़्तों से जब लोग खान में काम करके आते थे तो उलटी, नाक से खून बहना जैसी समस्याएं पेश आती थीं। साथ ही लोगों ने बताया कि 2013 में इसी के साथ मौजूद एक और खान में विस्फोट के कारण 11 लोगों की जान चली गयी थी। उस जगह सुरक्षा मामलों का जो इंचार्ज था, उसी व्यक्ति को हादसे के बाद सेवेरनाया कोला खान में इसी जिम्मेदारी पर लगा दिया गया था।

सेवेरनाया कोयला खान, रूस के पांचवें सब से अमीर व्यक्ति अलेक्सी मोरदाशोव की संपत्ति है। इसलिए उसके ऊपर कोई कार्रवाई होगी, इसके बारे में संदेह ही है। बल्कि उसने तो कोयला खान को 6 महीनों की मरम्मत के बाद दुबारा चालू करने का भी ऐलान कर दिया है।

रूस में हुआ यह हादसा कोई पहला नहीं है और ना ही आखिरी होगा। हर साल विश्व में कोयला खान हादसों में 20,000 से ज्यादा मज़दूरों की मौत होती है और इसमें बड़ा हिस्सा चीन के भीतर होने वाले हादसों का होता है। भारत में भी अक्सर कोयला खदानों में होने वाली दुर्घटनाओं में मज़दूरों की मौत होती रहती है। लगातार ऐसे हादसों का घटित होना इस पूरी मुनाफे पर टिकी हुई व्यवस्था का ही परिणाम है जिसमें मुनाफ़े के आगे इंसान की जान की कोई क़ीमत नहीं है। हादसों के बाद प्रशासन और सरकारों की ओर से सुरक्षा को लेकर कुछ दिखावटी फैसले किये जाते हैं लेकिन कुछ ही समय बाद मुनाफे के आगे ऐसे फैसलों की असल औकात दिख जाती है और काम फिर से पहले की तरह चलता रहता है। मुनाफे पर टिकी हुई इस पूरी व्यवस्था को उखाड़ कर ही ऐसे हादसों की संभावना को बेहद कम किया जा सकता है।

– मानव

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

(दूसरी किस्त)

अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य एवं प्रसिद्ध राजनीतिक चित्रकार ह्यूगो गेलर्ट ने 1934 में मार्क्स की 'पूँजी' के आधार पर एक पुस्तक 'कार्ल मार्क्सेज़ कैपिटल इन लिथोग्राफ़्स' लिखी थी जिसमें 'पूँजी' में दी गयी प्रमुख अवधारणाओं को चित्रों के ज़रिये समझाया गया था। गेलर्ट के ही शब्दों में इस पुस्तक में ''...मूल पाठ के सबसे महत्वपूर्ण अंश ही दिये गये हैं। लेकिन मार्क्सवाद की बुनियादी समझ के लिए आवश्यक सामग्री चित्रांकनों की मदद से डाली गयी है।'' 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए इस शानदार कृति के चुनिन्दा अंशों को एक श्रृंखला के रूप में दिया जा रहा है। — सम्पादक

पूँजी संचय का रहस्य

आदिम संचय: ऐसा सम्पत्तिहरण जिसमें खेतिहर आबादी को ज़मीन से बेदख़ल कर दिया गया

इंग्लैण्ड में भूदास प्रथा चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक विलुप्तप्राय हो गयी थी। उस समय तक, और उससे भी हद तक अधिक पंद्रहवीं सदी तक, आबादी का बहुलांश स्वतंत्र मालिक किसानों से मिलकर बना था – भले ही उनके मालिकाने के अधिकार पर पर्दा डालने वाली सामन्ती पदवी कुछ भी रही हो। सामन्ती भूस्वामियों की बड़ी जागीरों में पहले के कारिन्दों, जो खुद भूदास होते थे, का स्थान स्वतंत्र किसानों ने ले लिया। मज़दूरी पर काम करने वाले खेतिहर मज़दूरों का एक हिस्सा ऐसे किसानों का था जो अपना खाली समय बड़े भूस्वामियों की जागीरों पर काम करने में लगाते थे, तथा कुछ हिस्सा वास्तविक मज़दूरी करने वालों के स्वतंत्र वर्ग का था जो संख्याबल में सापेक्ष व निरपेक्ष दोनों ही रूपों में छोटा था। उजरती मज़दूरी वाले इस वर्ग के सदस्य भी वास्तव में स्वतंत्र किसान थे क्योंकि उनकी मज़दूरी के अतिरिक्त उन्हें झोंपड़ी और चार एकड़ या उससे भी अधिक खेती करने योग्य ज़मीन दी जाती थी। ठेठ किसानों की तरह उन्हें भी सामूहिक भूमि के उपयोग का अधिकार प्राप्त था, जिस पर वे अपने ढोरों को चराते थे, एवं इसी प्रकार वे उससे ईंधन, लकड़ी, पीट आदि भी हासिल करते थे।

जिस क्रान्ति ने उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली की नींव डाली उसकी पूर्वपीठिका पंद्रहवीं शताब्दी की अन्तिम तिहाई में और सोलहवीं शताब्दी के पहले दशकों में तैयार की गयी थी। सामंतों पर आश्रितों के समूहों के टूटने से बड़ी संख्या में स्वामीविहीन सर्वहारा श्रम बाज़ार में झोंक दिये गये थे..। ..हालाँकि राजसी सत्ता (जो स्वयं बुर्जुआ विकास की उपज थी) ने अपनी संप्रभुता को बेरोकटोक बनाने के प्रयास में ऐसे समूहों के टूटने की प्रक्रिया को तेज़ किया, तथापि यह इस परिघटना का एकमात्र कारण हरगिज़ न था। हुआ यूँ कि बड़े सामंती स्वामियों ने राजा और संसद के प्रति अपने धृष्टतापूर्ण विरोध के चलते किसानों को ज़मीन से जबरन बेदख़ल करके (हालाँकि किसानों की सामंती पदवी वही थी जो सामंतों की थी) और सामूहिक भूमि पर क़ब्ज़ा करके कहीं ज़्यादा संख्या में सर्वहारा को पैदा किया।

फ्लेमिश ऊन उद्योग के उभार एवं तदनुरूप ऊन की कीमतों में बढ़ोत्तरी से इंग्लैण्ड में इस प्रक्रिया को तेज़ी मिली। महा सामंती युद्धों ने पुराने सामंती अभिजातों को तहस-नहस कर दिया था, एवं नये अभिजात अपने युग की संतान थे जिनके लिए पैसा ही सबसे बड़ी ताक़त था। उनका आदर्श वाक्य था खेती की ज़मीनों को भेड़ों के बाड़े में बदल डालो...

इस क्रान्ति के नज़ारे को देखकर विधायिकाएँ भयभीत हो उठीं। वे अभी सभ्यता की उस चोटी पर नहीं पहुँची थीं जहाँ से ''राष्ट्रों की सम्पदा'', यानी पूँजी का निर्माण एवं आम जन का निर्मम शोषण तथा निर्धनता को राजनीतिज्ञों के समान विवेक की पराकाष्ठा समझा जाता था। ...छोटे फार्मरों व किसानों के सम्पत्तिहरण के ख़िलाफ़ आम शिकायतें एवं विधेयक (यह विधेयक डेढ़ शताब्दियों तक चला) निष्प्रभावी साबित हुए। बेकन ने अनजाने में ही इस विफलता की पहेली सुलझा ली थी। अपने उन्तीसवें निबन्ध में वे लिखते हैं: ''राजा हेनरी सातवें का उपकरण सशक्त और प्रशंसनीय था: किसानों की ज़मीन व घर को स्तरीय बनाने का प्रयास यानी उनको इतनी ज़मीन देने का प्रयास जो किसी प्रजाजन को आरामदायक जीवन बिताने के लिए आवश्यक था, और जिससे उसे दासत्व की परिस्थिति में न जीना पड़े, तथा जिससे हल मालिक किसान के हाथ में रहे न कि भाड़े के मज़दूरों के हाथ में।'' जबकि दूसरी ओर पूँजीवादी व्यवस्था की ज़रूरत यह थी कि आमजन दासत्व की परिस्थिति में जियें, वे पूँजी के भाड़े के मज़दूर बन जायें; और उनके श्रम के साधन पूँजी में तब्दील हो जायें। यहाँ तक कि अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भी यदि किसी खेतिहर मज़दूर की झोंपड़ी से लगा एक-दो एकड़ की ज़मीन का टुकड़ा नहीं होता था तो शिकायत कर दी जाती थी। आज यदि किसी झोंपड़ी के पास बगीचा लगाने के लिए ज़मीन का कोई छोटा टुकड़ा होता है अथवा यदि झोंपड़ी का मालिक अपनी झोंपड़ी से काफ़ी दूर दो-एक रूड ज़मीन लगान पर दे सकता है तो वह खुशकिस्मत कहा जायेगा। जैसाकि डॉ. हंटर कहते हैं, ''यहाँ भूस्वामी और काश्तकार में मिलीभगत है। यदि झोंपड़ी के साथ एक-दो एकड़ ज़मीन भी होगी तो मज़दूर कुछ ज़्यादा ही स्वतंत्र हो जायेगा।''

सोलहवीं सदी में धर्मसुधार और उसके फलस्वरूप चर्च की संपत्ति की लूट से आम लोगों के जबरन संपत्तिहरण की प्रक्रिया को एक नया और जबर्दस्त संवेग मिला। धर्मसुधार के समय कैथोलिक चर्च, जो सामंती प्रणाली के मातहत था, इंग्लैण्ड की भूमि के बहुत बड़े हिस्से का स्वामी था। मठों के दमन और उससे जुड़े क़दमों ने मठवासियों को सर्वहारा में तब्दील होने पर मजबूर कर दिया। चर्च की संपत्ति अधिकांशत: राजा के लुटेरे कृपापात्रों को दे दी गयी अथवा सट्टेबाज़ काश्तकारों और नागरिकों के हाथों हास्यास्पद रूप से कम क़ीमत पर बेच दी गयी, जिन्होंने पुश्तैनी शिकमीदारों को ज़मीन से खदेड़ दिया तथा उनकी छोटी-छोटी जोतों को मिलाकर बड़ी जागीरों में तब्दील कर दिया। चर्च को दिये जाने वाले दशांश (कुल पैदावार का दसवाँ भाग) के एक हिस्से का जो कानूनी अधिकार गाँव के ग़रीबों को मिलता था उसे भी चुपचाप ज़ब्त कर लिया गया।

रानी एलिज़ाबेथ ने अपने साम्राज्य के एक दौरे के बाद चिल्लाकर कहा था ''हर ओर कंगाल ही कंगाल हैं!'' उसके शासन के तिरालिसवें वर्ष में ग़रीबों की सहायता के लिए कर लगाकर कंगाली के अस्तित्व को आधिकारिक रूप से मानना ही पड़ा।..।

चर्च की संपत्ति भूस्वामित्व की पारंपरिक व्यवस्था की धार्मिक रक्षा का साधन थी। पहले के विलुप्त हो जाने के साथ ही दूसरे की रक्षा करना असंभव हो गया।

सत्रहवीं सदी के अन्तिम दशकों तक भी स्वतंत्र किसानों का वर्ग काश्तकारों के वर्ग से अधिक संख्या में था। स्वतंत्र किसान ही क्रॉम्वेल के समर्थकों की मुख्य ताक़त थे, और यहाँ तक कि मैकॉले यह स्वीकार करता है कि वे उन देहाती जमींदारों एवं उनके नौकर देहाती पादरियों की तुलना में कहीं बेहतर थे जिन्हें अपने मालिक द्वारा छोड़ी हुई रखैलों के साथ विवाह करना पड़ता था। 1750 के आसपास तक स्वतंत्र किसानों के यह वर्ग विलुप्त हो चुका था; अठारहवीं सदी के अन्तिम दशकों तक सामूहिक स्वामित्व के आख़िरी निशान तक का भी वही हश्र हो चुका था। यहाँ पर हमारा सरोकार कृषि क्रान्ति के शुद्ध रूप से आर्थिक कारणों से नहीं है। हमारी मौजूदा दिलचस्पी उन

जबरन तरीकों में है जिनका इस्तेमाल बदलाव लाने के लिए किया गया...

''गौरवशाली क्रान्ति'' ने सिर्फ़ ऑरेंज के विलियम को ही नहीं बल्कि अतिरिक्त मूल्य को हड़पने वाले पूँजीपतियों को भी सत्ता में पहुँचाया था। इन लोगों ने राज्य की भूमि की लूट की सीमा को पहले से कहीं अधिक पैमाने पर विस्तारित करके एक नये युग का सूत्रपात किया। सरकारी जागीरें दान में भेंट कर दी गयीं, बेहद कम क़ीमतों में बेच दी गयीं, या सीधे हड़पकर निजी जागीरों में मिला दी गयीं। ये सबकुछ करते समय कानूनी औचित्य की ज़रा भी परवाह नहीं की गयी।

आधुनिक अंग्रेज़ अल्पतंत्र की राजसी जागीरें इसी प्रकार धोखे से हड़पी गयी राजकीय ज़मीनों और उसके साथ लूटी गयी चर्च की जागीर से मिल कर बनी थीं (जिस हद तक वे गणतांत्रिक क्रान्ति के दौरान एक झटके में छीन नहीं ली गयी थीं)। इस प्रक्रिया को सुगम बनाने का काम बुर्जुआ पूँजीपतियों ने किया था; इसके पीछे कारण यह था कि वे चाहते थे कि ज़मीन ख़रीद-फ़रोख्त वाला माल बन जाये, बड़े पैमाने की खेती के दायरे को वे बढ़ाना चाहते थे, स्वामीविहीन सर्वहाराओं की आपूर्ति को वे बढ़ाना चाहते थे, आदि-आदि। इसके अतिरिक्त भूस्वामियों का यह नया अभिजात वर्ग नये बैंकपतियों एवं बड़े उद्योगपतियों का स्वाभाविक सहयोगी था (जो इस समय संरक्षक चुंगियों के तगड़े समर्थक थे)...

सामूहिक भूमि का जबरन हड़पा जाने और उसके साथ ही साथ खेतीयोग्य ज़मीन को चरागाहों में तब्दील करने की शुरुआत पंद्रहवीं सदी में शुरू हई और सोलहवीं सदी तक जारी रही। परन्तु उस समय यह प्रक्रिया व्यक्तिगत हिंसा के कृत्यों के ज़रिये मुकम्मिल हुई जिसके ख़िलाफ़ विधायिका ने डेढ़ सौ वर्षों तक संघर्ष किया, भले ही वह संघर्ष व्यर्थ गया। अठारहवीं सदी में हुई प्रगति इसी से दिख जाती है कि कानून स्वयं लोगों की ज़मीन हड़पने का औजार बन गया, हालाँकि बड़े किसानों ने अपने इसके अतिरिक्त अपने तुच्छ तरीकों को लागू करना जारी रखा।

इस लूट का संसदीय रूप था सामूहिक ज़मीन की बाड़ेबंदी के लिए कानून पारित करना, ऐसे कानून जिसके ज़रिये बड़े भूस्वामियों ने जनता की ज़मीन खुद को तोहफ़े में दी जो इस प्रकार उनकी अपनी निजी संपत्ति बन गयीं...

(पेज 12 पर जारी)

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

(पेज 11 से आगे)

जहाँ स्वतंत्र किसानों का स्थान कच्चे असामियों (एक साल के लिए पट्टे पर ज़मीन जोतने वाले काश्तकारों और ज़मींदारों की दया पर निर्भर रहने वाली दासवत भीड़) ने ले लिया, वहीं सामूहिक भूसंपत्ति का योजनाबद्ध ढंग से हड़पे जाने और उसके साथ ही साथ राजकीय जागीर की लूट ने उन बड़ी जोतों के आकार को बढ़ाने में मदद की जिन्हें अठारहवीं सदी में ''पूँजी के फ़ार्म'' या ''सौदागरों के फ़ार्म'' कहा जाता था और ''देहाती लोगों को उन्मुक्त करके'' उन्हें उद्योग में काम करने वाले सर्वहारा में परिणत कर दिया।

लेकिन अठारहवीं सदी उन्नीसवीं सदी की भाँति अभी भी पूरे दिल से इस विचार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी कि ऐसी व्यवस्था में राष्ट्रीय संपदा का आधार आम जन की दरिद्रता होगी। इसी वजह से हमें उस दौर के आर्थिक साहित्य में ''सामूहिक भूमि की बाड़ेबंदी'' के ख़िलाफ़ जीवन्त वाद-विवाद देखने को मिलता है।....

प्राइस ''छोटे मालिकों और काश्तकारों की विशाल संख्या की बात करता है जो खुद की और परिवारों की परवरिश उनके क़ब्ज़े की ज़मीन की पैदावार से, सामूहिक भूमि पर चरने वाली भेड़ों से, मुर्गियों, सूअरों आदि के सहारे करती थी और इसलिए जिनको जीवन निर्वाह के साधनों को खरीदने का मौका नहीं मिलता।'' ऐसे हैं वे ''छोटे किसान'' जिनका वह अगले उद्धरण में ज़िक्र करता है।

''जब यह ज़मीन कुछ बड़े किसानों के हाथ में आ जाती है तो इसका नतीजा यह होता है कि छोटे किसान ऐसे लोगों के समूह में तब्दील हो जाते हैं जो दूसरों के लिए काम करके अपनी जीविका चलाते हैं और जिनके लिए अपनी हर ज़रूरत के लिए

बाज़ार जाना मजबूरी हो जाती है। क़स्बों और मैन्युफैक्चरों में बढ़ोत्तरी होगी क्योंकि जगह और रोज़गार की तलाश में ज़्यादा से ज़्यादा लोग उनकी ओर आकर्षित होंगे।...

वास्तव में सामूहिक भूमि को हड़पा जाना और उसके साथ होने वाली कृषि में क्रान्ति का खेतिहर मज़दूरों पर इतना असर हुआ कि जैसाकि स्वयं इडेन हमें बताता है कि 1765 व 1780 के बीच उनकी मज़दूरी जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक खर्च से भी नीचे गिरने लगी जिसकी वजह से उन्हें ग़रीबी कानूनी सहायता का अतिरिक्त लाभ देना पड़ा। वह लिखता है कि ''उनकी मज़दूरी जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में लगने वाले ख़र्च से ज़्यादा नहीं थी''। ...

उन्नीसवीं सदी में खेत मज़दूर और सामुदायिक संपत्ति के बीच का सम्बन्ध निश्चित रूप से भुलाया जा चुका था। हाल के दिनों की बात तो जाने दीजिये 1801 से 1831 के बीच 3,511,770 एकड़ की जो सामूहिक भूमि ग्रामवासियों से छीन ली गयी थी और बाकायदा कानूनन तौर पर भूस्वामियों द्वारा दूसरे भूस्वामियों को दी गयी थी क्या उसकी एवज में खेतिहर आबादी को एक कौड़ी का भी मुआवजा मिला है?

सम्पत्तिहरण का अन्तिम बड़ा काम, खेतिहर आबादी के ज़मीन से अलगाव की अन्तिम अवस्था ने वह रूप अख़्तियार किया है जिसे जागीर का सफ़ाया कहा जाता है, यानी उनमें से लोगों का सफ़ाया। अब तक आजमाये गये सभी अंग्रेज़ी तरीकों की परिणति इसी ''सफ़ाये'' में हुई...

''जागीरों के सफ़ाये'' का वास्तव में क्या महत्व है यह आधुनिक रूमानी साहित्य की आदर्श भूमि यानी स्कॉटलैंड के पर्वतीय क्षेत्र के अध्ययन में ही देखने को मिलता है। वहाँ यह प्रक्रिया अपने सुनियोजित चरित्र के रूप में और उस बड़े पैमाने के रूप में जानी जाती है जिस पर वह अंजाम दी जाती है। जबकि आयरलैंड में भूस्वामी कई गाँवों का एक साथ सफ़ाया कर देने की हद तक जा चुके हैं, स्कॉटलैंड में जर्मन रियासतों जितने बड़े इलाकों को एक प्रहार में ही निपटाया जाता है।

स्कॉटलैंड में ''जागीरों के सफ़ाये'' की एक अन्य विशेषता संपत्ति का वह विशेष रूप है जिसके तहत हड़पी गयी ज़मीन रखी जाती थी।

(अगले अंकों में जारी)

अनुवाद : **आनन्द सिंह**

चीन में मज़दूरों का बढ़ता असन्तोष

समाजवाद की खाल ओढ़े हुए चीन के पूँजीवादी शासकों की तमाम कोशिशों के बावजूद वहाँ मज़दूरों के बढ़ते आन्दोलनों की ख़बरें अब बाहर लोगों तक पहुँचने लगी हैं।

चीन की एक संस्था 'चाइना लेबर बुलेटिन' के अनुसार वर्ष 2015 में चीन में मज़दूरों की करीब 2774 हड़तालें एवं विरोध प्रदर्शन हुए जो वर्ष 2014 (1379 हड़तालें) की तुलना में लगभग दो गुना और वर्ष 2011 (185 हड़तालें) की तुलना में 13 गुना बढ़ चुकी हैं। इन हड़तालों में से एक-तिहाई हड़तालें मुख्य रूप से मैन्युफेक्चरिंग और निर्माण क्षेत्र में मालिकों द्वारा वेतन न दिए जाने पर संगठित हुई थी। चीन के श्रम मंत्रालय के अनुसार वर्ष 2015 में करीब 10 लाख 56 हज़ार औद्योगिक विवाद सामने आये। अभी इस वर्ष अकेले जनवरी माह में ही 503 हड़तालें एवं औद्योगिक विवाद सामने आ चुके हैं। ये हड़तालें मुख्यत: मालिकों द्वारा मज़दूरों को वेतन न दिए जाने, कारखानों में तालाबंदी और छंटनी, मालिकों द्वारा मजदूरों के लिए मौजूद श्रम कानूनों के प्रावधानों को लागू न करने के खिलाफ़ संगठित हो रही है। यूं तो चीन की सरकार द्वारा वर्ष 1995 में श्रम कानूनों में संशोधन करके वेतन प्राप्त करने का अधिकार, काम के दौरान आराम और अत्याधिक ओवरटाइम न कराए जाने के प्रावधान शामिल किये गये थे, पर जैसा कि हम सभी जानते है कि ये कानून महज़ कागज़ों की शोभा बढ़ाने और मेहनतकशों को भ्रमित करके उनकी आँखों में धूल झोंकने के लिए

चीन में अप्रैल माह में एक फैक्ट्री के बाहर जुटे हड़ताली मज़दूर और पुलिस बल

बनाए जाते है।

ग़ौरतलब है कि चीन के सबसे बड़े मैन्युफेक्चरिंग क्षेत्र ग्वाङडोंग में ही अकेले वर्ष 2015 के पहले ग्यारह माहों में बेहतर वेतन, पिछले बकाया वेतन और सामाजिक सुरक्षा, यूनियन गठित करने आदि माँगों को लेकर 300 से अधिक हड़तालें हुई थी। इसके अलावा ये हड़तालें जियाङसु, शाङडांग, हेनान प्रांत आदि में भी हुई। यहाँ यह भी बताते चले कि वर्ष 2010 में गवाङडोंग प्रांत में स्थित फॉक्सकान कम्पनी में एक मज़दूर की आत्महत्या के बाद मज़दूरों की हड़ताल शुरू हुई जो जल्द ही होंडा और टोयोटा जैसी कम्पनियों के मज़दूरों तक फैल गयी। चीन में मज़दूरों के बीच मौजूदा हालातों के प्रति व्याप्त आक्रोश का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अभी जनवरी माह में निङज़िया प्रांत में एक मज़दूर ने एक निर्माण कम्पनी के ठेकेदार द्वारा वेतन न दिए जाने पर एक बस में आग लगा दी।

आज चीन में मज़दूरों के इन हालातों के लिए मुख्यत: पूँजीवाद की विश्वव्यापी मंदी ज़िम्मेदार है जिसने मालों की माँग और खपत में भारी गिरावट पैदा कर दी है। परिणामस्वरूप पूँजीपतियों ने औद्योगिक उत्पादन में भारी कमी करना शुरू कर दिया है जिसका ख़ामियाज़ा वैश्विक पैमाने पर मेहतनकशों को अपना रोज़गार गँवाकर भुगतना पड़ रहा है। चीन भी इस परिघटना से अछूता नहीं है। ग़ौर करने लायक तथ्य यह भी है कि आने वाले समय में चीन में ये हालात और अधिक बिगड़ने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। चीन की सरकार की नीतियों के अनुसार आने वाले दिनों में चीन में कोयले और स्टील के 20 लाख मज़दूरों की छंटनी की जायेगी। यहाँ यह भी बताते चले कि यह छंटनी मुख्यत: सरकारी उपक्रमों के लिए प्रस्तावित है। वैसे वर्ष 2013 से लेकर अब तक कोयला क्षेत्र में पहले ही 8 लाख 90 हज़ार मज़दूरों की छंटनी की जा चुकी है। इसके अलावा मज़दूरों की छंटनी सीमेंट, ग्लास और पोत-निर्माण के क्षेत्रों में भी किये जाने का प्रस्ताव है।

चीन में मज़दूर अपने इन हालातों के खिलाफ़ निरंतर संघर्षरत है और अपनी माँगों को लेकर सड़कों पर उतर रहे हैं। यहाँ यह भी जानना दिलचस्प होगा कि चीन में केवल सरकारी नियंत्रण के तहत काम करने वाली 'ऑल चाइना फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स' को ही सरकार द्वारा कानूनी मान्यता हासिल है। पूँजीपतियों की ख़िदमत में लगी यह ट्रेड यूनियन किसी भी रूप में मज़दूरों के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करती और यही कारण है कि मज़दूरों को इस ट्रेड यूनियन पर राई-रत्ती भी भरोसा नहीं है। चीन की सरकार ने मज़दूरों के स्वतंत्र यूनियन बनाने के किसी भी प्रयास पर रोक लगा रखी है। मज़दूरों को अपनी पहलकदमी पर संगठित करने वाले मज़दूर कार्यकर्ताओं के प्रति सरकार का रुख़ इसी बात से समझा जा सकता उन्हें पुलिस द्वारा प्रताड़ित किया जाता है, ग़िरफ्तार किया जाता है, उनके खिलाफ़ व्यक्तिगत कुत्सा प्रचार भी किया जाता है जिसमें चीन की मीडिया बढ़-चढ़कर भूमिका निभाती है। कुछ मामलों में तो कार्यकर्ताओं को राष्ट्रीय मीडिया पर मज़दूरों को संगठित करने के अपने प्रयासों के लिए माफी तक माँगने को बाध्य किया जाता है।

चीन में मज़दूरों की बढ़ती वर्ग चेतना और उसके परिणामस्वरूप तीखे होते वर्ग संघर्ष से चीन की सरकार कितनी ख़ौफ़ज़दा है इसे इस बात से समझा जा सकता है कि चीन की सरकार का नेतृत्व करने वाली तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी ने हाल ही में 'सौहार्दपूर्ण श्रम संबंधों का संविधान' नामक नीतिगत दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है ताकि मज़दूरों के बढ़ते आक्रोश पर पानी की कुछ छींटे डालकर उसे शांत किया जा सके। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि चीन की नामधारी कम्युनिस्ट पार्टी का मज़दूरों के हितों से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं है। वर्ष 1976 में माओ की मृत्यु के बाद हुए पूँजीवादी पुर्नस्थापना के बाद से ही इस पार्टी ने पहले छिपे रूप में और बाद में खुले तौर पर पूँजीवाद की राह पकड़ ली और पूँजीपतियों की ख़िदमत में लगकर उनकी पार्टी बन कर रह गयी। बहरहाल मज़दूरों के प्रति अपने रवैये से यह नामधारी कम्युनिस्ट पार्टी खुद को रोज़-बरोज़ नंगा कर रही है और साथ ही साथ मज़दूरों के आक्रोश का भी केंद्र बन रही है। चीन में मज़दूरों के बढ़ते आक्रोश की लपटें इस बात का सबूत है कि मज़दूर वर्ग पूँजीवाद द्वारा उस पर बरपाये कहर को चुपचाप नहीं सहेगा, उसके ख़िलाफ़ लगातार संघर्ष करता रहेगा। हालाँकि यह बात भी उतनी ही सच है कि मज़दूरों के ऐसे तमाम स्वत: स्फूर्त विद्रोह अपने आप क्रांति में परिवर्तित नहीं होंगे, यह तो क्रांतिकारी विचारधारा और क्रांतिकारी पार्टी के तहत मज़दूर वर्ग के संगठित होने पर ही संभव है।

– श्वेता

23 मार्च के मौके पर देशभर में विभिन्न कार्यक्रम

भगतसिंह को याद करो, नयी क्रान्ति की राह चलो!

शहीदे आज़म भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव की शहादत की 85 वीं बरसी पर शहीदों के विचारों के प्रचार-प्रसार के मकसद से जन-अभियानों का आयोजन

शहीद-ए-आज़म भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के शहादत की 85वीं बरसी पर बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, पंजाब स्टूडेण्ट यूनियन (ललकार), स्त्री मुक्ति लीग, जागरूक नागरिक मंच और विभिन्न यूनियनों द्वारा देश भर में प्रचार अभियानों व सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से अमर शहीदों के विचारों का जनता के बीच प्रचार-प्रसार किया गया।

करोड़ों लोगों के दिलों की धड़कन हमारे ये शहीद लोगों के दिलों में बेशक आज भी ज़िन्दा हैं किन्तु इनके क्रान्तिकारी विचारों से व्यापक मेहनतकश जनता आम तौर पर अनभिज्ञ दिखाई देती है। वैसे तो देश की संसद तक में भी भगतसिंह की मूर्ति रखी हुई है किन्तु शहीदों के विचार लोगों तक चले जायें इस बात से शासक वर्ग आज भी भयाक्रान्त रहता है। एक इंसान द्वारा दूसरे इंसान के और एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के किसी भी प्रकार के शोषण के ख़िलाफ़ कुर्बान होने वाले एच.एस.आर.ए. (हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन) के हमारे इन जाबांज़ नायकों के विचार मेहनतकश जनता के संघर्षों के लिए जहाँ दिशा सूचक के समान हैं वहीं शासक वर्ग की रीढ़ में इनसे वर्तमान में भी कँपकँपी पैदा हो जाती है। भगवा गिरोह जो आज राष्ट्रवाद और देशप्रेम का ठेकेदार बना हुआ है भगतसिंह का नाम ही इसके लिए दु:स्वप्न के समान है। संघियों को यदि देश से इनकी गद्दारी का इतिहास याद दिला दिया जाये तो इन्हें साँप सूँघ जाता है।

भगतसिंह ने कहा था कि व्यक्ति को ख़त्म किया जा सकता है लेकिन उसके विचारों को नहीं और क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है। आज भी मुनाफ़े पर आधारित व्यवस्था के खात्मे के लिए और साम्प्रदायिक-जातिवादी राजनीति की काट करने के लिए हमारे इन शहीदों के विचार बेहद महत्वपूर्ण हैं तथा इन्हें जनता के बीच ले जाना पहले किसी भी समय से ज़्यादा ज़रूरी हो गया है। इसी के मद्देनज़र देश के अलग-अलग इलाक़ों में गाँवों में, शहरों की बस्तियों में, कारखानों और स्टेशनों, दफ़्तरों आदि में क्रान्तिकारियों के विचारों को लेकर विचार यात्राएँ व जन-अभियान चलाये गये। पर्चा वितरण, पोस्टर, दीवार लेखन, नुक्कड़ सभा, नुक्कड़ नाटक, विचार गोष्ठी, क्रान्तिकारी संगीत संध्या, क्रान्तिकारी साहित्य आदि माध्यमों से मज़दूरों, ग़रीब किसानों, आम मध्यवर्ग और व्यापक आबादी के बीच नयी क्रान्ति के सन्देश को पहुँचाया गया। इन अभियानों की एक संक्षिप्त रिपोर्ट यहाँ प्रस्तुत है।

दिल्ली और एनसीआर के विभिन्न इलाकों में शहादत दिवस के अवसर पर विभिन्न कार्यक्रमों और यादगारी यात्राओं का आयोजन किया गया। नौभास के अपूर्व ने बताया कि उत्तर पश्चिमी दिल्ली की 'नौजवान भारत सभा', 'बिगुल मज़दूर दस्ता', 'दिशा छात्र संगठन' और 'स्त्री मज़दूर संगठन' की इकाइयों द्वारा संयुक्त रूप से 10 मार्च से 27 मार्च तक 'शहीद यादगारी यात्रा' निकाली गयी। प्रचार गाड़ी पर बनी झाँकी और साइकिलों पर बैनर और तख्तियों के साथ इस विचार यात्रा ने दिल्ली के नरेला, शाहपुर गढ़ी, भोरगढ़, होलम्बी, मेट्रो विहार, बवाना, पूठ, राजा विहार, समयपुर बादली, सूरज पार्क, शाहाबाद डेयरी, रोहिणी के तमाम सेक्टर, जामिया नगर, प्रह्लादपुर, दिल्ली टेक्निकल युनिवर्सिटी, प्रशान्त विहार, पाण्डव नगर आदि जगहों के अलावा दिल्ली से लगते हरियाणा के सोनीपत ज़िले में क्रान्तिकारी शहीदों के विचारों को लेकर दस्तक दी। इस दौरान पचास हज़ार से अधिक पर्चे बाँटे गये, क्रान्तिकारी पोस्टर लगाये गये, जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ की गयीं, क्रान्तिकारी और प्रगतिशील फ़िल्मों के प्रदर्शन हुए, शहीदों के जीवन, विचारों और उनकी विरासत पर पोस्टर प्रदर्शनियाँ लगायीं गयीं और क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये। सभी जगह प्रचार टोली ने कहा कि शहीदों के विचारों को हमें बड़ पैमाने पर आम जनता के बीच ले जाना होगा। जब मज़दूर-किसान, छात्र-नौजवान जागेंगे तभी इस सड़ाँध मारती व्यवस्था को बदला जा सकता है तथा शहीदों के सपनों को साकार किया जा सकता है। आज लोकतंत्र का मतलब हमारे देश में महज़ यही रह गया है कि हर पाँच साल में ठप्पा मारकर किसी न किसी पार्टी को सरकार बनाने के लिए चुन लो। नेताओं, अफसरों, बिचौलियों का भ्रष्टाचार जब हद से ज्यादा हो जाता है, तो बीच-बीच में जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए सुधार और भ्रष्टाचार से मुक्ति का झण्डा उठाये हुए कोई "श्रीमान सुथरा जी" आ जाते हैं जो व्यवस्था पर लगे खून के धब्बों को धोने को कोशिश करते हैं, ताकि लोगों का भ्रम बना रहे और पूँजी की कानूनी लूट और लोकतंत्र का ड्रामा चलता रहे। जाति और धर्म के नाम पर आम गरीबों-मेहनतकशों को आपस में बाँट देना और लड़ाते रहना, यह सत्ताधारियों की पुरानी तरकीब है, इसे समझना होगा और इसके ख़िलाफ़ एक लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी।

दिल्ली के ही करावल नगर, खजूरी, वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, पीरागढ़ी इलाकों में नौजवान भारत सभा, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन, करावल नगर मज़दूर यूनियन, दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन के संयुक्त प्रयासों से 27 मार्च से 29 मार्च के बीच तीन दिवसीय शहीद यादगारी यात्रा का आयोजन किया गया। नुक्कड़ सभाओं के माध्यम से लोगों को बताया गया कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में सत्ता में भगवा रंग में रंगा मोदी आये या फ़िर आम आदमी की रट लगाने वाला नौटंकीबाज़ केजरीवाल आये इससे ग़रीब आबादी के हालात में कोई परिवर्तन नहीं आने वाला है। सरकारें पूरी तरह से पूँजीपतियों पर मेहरबान हैं इसीलिए तो बैंकों को एक लाख 14 हज़ार करोड़ का कर्ज़ा निगल जाने वाले पूँजीपति घरानों का बाल भी बाँका नहीं हुआ। दूसरी तरफ़ महँगाई, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार की चक्की में पिस रही आम जनता के दु:ख-तक़लीफ़ों से इन तथाकथित जनप्रतिनिधियों को कुछ भी लेना-देना नहीं है। इस दौरान व्यापक पर्चा वितरण, नुक्कड़ सभाओं और फ़िल्म और पोस्टर प्रदर्शनी के माध्यम से शहीदों के विचारों को मज़दूर और निम्नमध्यवर्गीय आबादी के बीच पहुँचाया गया।

गाज़ियाबाद में भी शहादत दिवस के अवसर पर कई कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। नौजवान भारत सभा की गाज़ियाबाद इकाई की संयोजिका श्वेता ने बताया कि कार्यक्रम की शुरुआत घण्टाघर स्थित भगतसिंह की प्रतिमा पर माल्यार्पण और सभा से हुई। इस मौके पर वक्ताओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष का रास्ता दिखाने और अपने प्राणों की आहुति देने वाले भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के साथ-साथ खालिस्तानी आतंकवाद के खिलाफ़ अपने प्राणों की आहुति देने वाले पंजाब के क्रान्तिकारी कवि अवतार सिंह पाश को भी याद किया। इस मौके पर विहान

(पेज 14 पर जारी)

उत्तर पश्चिमी दिल्ली के पाण्डव नगर में शहीद यादगारी यात्रा के तहत सभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम

दिल्ली एनसीआर के गाज़ियाबाद में प्रचार अभियान चलाते हुए नौजवान भारत सभा के कार्यकर्त्ता

दिल्ली के खजूरी इलाके में शहीद यादगारी यात्रा के तहत प्रचार अभियान चलाते हुए

क्रान्तिकारी नवजागरण के तहत प्रयाग स्टेशन पर सभा करते हुए

लखनऊ में क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार की मुहिम के तहत पर्चे बाँटते हुए

हरियाणा के धमतान साहिब गाँव की जनसभा का चित्र

चण्डीगढ़-मोहाली में शहीद संकल्प यात्रा के तहत नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत करते हुए

पंजाब के एक गाँव में क्रान्तिकारी मुहिम के तहत संगीत कार्यक्रम करते हुए

पटना में पुस्तक और पोस्टर प्रदर्शनी के दौरान नौभास के कार्यकर्त्ता

(पेज 13 से आगे)

टोली द्वारा क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये। इसके बाद 25 से 27 मार्च तक चले क्रान्तिकारी नवजागरण अभियान के तहत प्रभात फ़ेरी, नुक्कड़ नाटक, संगीत संध्या, पुस्तक प्रदर्शनी, फ़िल्म प्रदर्शन आदि के माध्यम से शहीदों के विचारों को लोगों तक पहुँचाया गया।

उत्तर प्रदेश में भी बड़े स्तर पर प्रचार अभियानों का आयोजन किया गया। नौभास के प्रसेन ने बताया कि पूर्वी उत्तरप्रदेश के काफ़ी बड़े इलाके में दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा तथा स्त्री मुक्ति लीग ने 15 दिवसीय क्रान्तिकारी नवजागरण अभियान चलाया। इसकी शुरुआत 15 मार्च की सुबह इलाहाबाद विश्वविद्यालय से साइकिल मार्च निकाल कर की गयी जो बालसन, आज़ाद पार्क, मेडिकल कॉलेज, रामबाग चौक, सिविल लाइन्स, कचेहरी होते हुआ बैंक रोड पर ख़त्म हुआ। 15 मार्च की शाम को इलाहाबाद के छोटा बघाड़ा, कटरा, राजापुर आदि इलाकों में साइकिल मार्च निकाला गया। इस दौरान कई नुक्कड़ सभाएँ की गयीं व क्रान्तिकारी गीत गाये गये। इसके बाद अगले दो दिनों तक इलाहाबाद के नैनी, झूँसी और फाफामऊ के अलग-अलग इलाकों में साइकिल मार्च, पैदल मार्च, नुक्कड़ सभाओं व पर्चा वितरण के कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। प्रयाग रेलवे स्टेशन और उसके आसपास के इलाकों में प्रभात फेरी निकाली गयी। 18 मार्च को जौनपुर में पैदल मार्च का आयोजन किया गया। इस दौरान जौनपुर के भण्डरिया स्टेशन, कोतवाली, अटाला मस्जिद आदि जगहों पर नुक्कड़ सभाएँ की गयीं और क्रान्तिकारी गीत गाये गये। 19 मार्च को अम्बेडकर नगर के सिंघलपट्टी स्थित 'शहीद भगतसिंह पुस्तकालय' से साइकिल मार्च की शुरुआत हुई। लगभग 50 किलोमीटर लम्बे इस साइकिल मार्च के दौरान सिंघलपट्टी, राजेसुल्तानपुर, पदुमपुर, चोरमरा, देवरिया, जहाँगीरगंज, कम्हरिया घाट, मैदनिया, गढ़वल आदि इलाकों में प्रचार अभियान चलाया गया। 20 मार्च को 'शहीद भगतसिंह पुस्तकालय' सिंघलपट्टी में 'शहीद-ए-आज़म भगतसिंह की विरासत' विषय पर विचार-विमर्श का आयोजन किया गया। 21 मार्च को आजमगढ़ शहर में एक पैदल मार्च निकाला गया जिस दौरान कई नुक्कड़ सभाएँ की गयीं और व्यापक पैमाने पर परचा वितरण किया गया। 22 से 27 मार्च के बीच गोरखपुर शहर के विभिन्न इलाकों और रेलों में प्रचार अभियान चलाया गया। 28 मार्च को मऊ, 29 मार्च को गाजीपुर, 30 मार्च को बनारस में यह अभियान चलाया गया। क्रान्तिकारी नवजागरण अभियान का समापन 31 मार्च को इलाहाबाद में किया गया। विभिन्न सभाओं में अभियान टोली ने कहा कि उत्तर प्रदेश में चुनाव सर पर है और ऐसे में साम्प्रदायिक ताकतें जनता को फ़िर से धर्म और मन्दिर-मस्जिद के नाम पर बाँटने के प्रयास कर रही हैं। सपा-बसपा से लेकर भाजपा-कांग्रेस तक वोट की गोट लाल करने के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार हैं। गाय और मन्दिर जैसे विषय पर आसमान सर पर उठा देने वाले योगी आदित्यनाथ जैसे लोग रोज़गार जैसे मसलों पर ज़बान तक नहीं हिलाते। ऐसे में हमें जाति-धर्म के नाम पर बँटने की बजाय सत्ताधारियों को अपनी एकता के दम पर झुकाना चाहिए और शहीदों के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए कमर कस लेनी चाहिए।

लखनऊ में शहादत दिवस की पूर्वसंध्या पर नौजवान भारत सभा, जागरूक नागरिक मंच और स्त्री मुक्ति लीग ने इन्क़लाबियों के विचारों को लोगों तक पहुँचाने के लिए क्रान्तिकारी प्रचार मुहिम की शुरुआत की। 'जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो', 'भगतसिंह की बात करेंगे, ज़ुल्म नहीं बर्दाश्त करेंगे', 'भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा, मेहनतकश और नौजवान उसे करेंगे पूरा' जैसे नारे लगाते हुए अभियान टोली ने पुराने लखनऊ के मुफ़्तीगंज, ठाकुरगंज, मुसाहिबगंज, छोटा इमामबाड़ा आदि इलाक़ों की गलियों में दर्जनों छोटी-छोटी सभाएँ कीं और पर्चे बाँटे। मार्च के अन्त तक शहर के कई और इलाकों में भी यह मुहिम चलायी गयी। सभाओं में और लोगों से बातचीत में कार्यकर्ताओं ने कहा कि पूँजीवादी राजनीति और संस्कृति ने सामाजिक ताने-बाने को आपसी कलह, फूट, नफ़रत, भ्रातृघाती हिंसा और तरह-तरह की मानसिक बीमारियों से भर दिया है। यह पूँजीवादी व्यवस्था अन्दर से सड़ चुकी है और इसी सड़ाँध से पूरी दुनिया के पूँजीवादी समाजों में हिटलर-मुसोलिनी के वे वारिस पैदा हो रहे हैं, जिन्हें फासिस्ट कहा जाता है। हमें अपने महान शहीदों द्वारा छेड़ी गयी अधूरी लड़ाई को अंजाम तक पहुँचाना होगा, मेहनतकश जनता के बहादुर सपूतों को भगतसिंह के विचारों का परचम ऊँचा उठाना होगा, आम जनता के इंक़लाबी जनसंगठन बनाने होंगे तथा देशी-विदेशी लूट और जनतंत्र के नाम पर जारी धनतंत्र की क़ब्र खोदने की तैयारी करनी होगी तभी जाकर शहीदों के सपनों का समतामूलक समाज बनेगा।

पंजाब के भी विभिन्न इलाकों में नौजवान भारत सभा, पंजाब स्टूडेण्ट यूनियन (ललकार), बिगुल मज़दूर दस्ता और टेक्सटाइल-होज़री कामगार यूनियन द्वारा विभिन्न माध्यमों के द्वारा जनता के बीच शहीदों के विचारों का प्रचार-प्रसार किया गया। नौभास के कुलविन्दर ने बताया कि पंजाब की नौजवानी को आज नशे और बेरोज़गारी की गर्त में धकेला जा रहा है, मज़दूर-किसान आबादी लगातार बर्बादी की तरफ़ ठेली जा रही है और दूसरी और चन्द घराने बेशुमार दौलत पर कुण्डली मारे बैठे हैं और सत्ता की मलाई चाट रहे हैं। ऐसे में पंजाब की मज़दूर, किसान और युवा आबादी को शहीदों की विचारों की फ़िर से याददिहानी करनी होगी और संगठित होकर अपनी आवाज़ उठानी होगी। लुधियाना की रेलवे कॉलोनी, रोज़ गार्डन और विभिन्न नागरिक इलाकों के साथ ही शहर से लगते थरीके, सुनेत जैसे गाँवों में भी व्यापक प्रचार अभियान चलाया गया। 22 मार्च को लुधियाना के पंजाबी भवन में 'भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव के बारे में भ्रम और असलियत' विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसका संचालन नौभास की बलजीत ने किया। विभिन्न भागीदारों ने उक्त गोष्ठी में अपने विचार रखे। इसके अलावा नौभास के केन्द्रीय कार्यालय पक्खोवाल और उसके आस-पास के फल्लेवाल, कैले, हलवारा, बुर्जलिट, बुर्जहकीमा, गुज्जरवाल, धालीया, तुसे, जौड़ाहा, पौड़हाई, कंगणवाळ आदि गाँवों में सघन प्रचार अभियान चलाया गया। इस दौरान खालिस्तानियों की गोली से शहीद होने वाले क्रान्तिकारी कवि अवतार सिंह पाश को भी याद किया गया। जिला मानसा के जोगा और अरोड़ी कपूरा गाँवों में प्रचार अभियान चले और शहीदों की याद में मार्च निकाले गये। 27 मार्च को जोगा गाँव में ही शहीदों की विरासत और आज के समय में इसका महत्व विषय पर विचार गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।

चण्डीगढ़ में नौजवान भारत सभा और पंजाब स्टूडेण्ट यूनियन (ललकार) की इकाइयों की ओर से 23 मार्च के शहीदों को समर्पित तीन दिवसीय क्रान्तिकारी मुहिम 'शहीद संकल्प यात्रा' का आयोजन किया गया। नौभास के मानव ने बताया कि यह तीन दिवसीय मुहिम चण्डीगढ़ के सेक्टरों और मोहाली के विभिन्न रिहायशी इलाकों में चलायी गयी। शहीद संकल्प यात्रा के दौरान शहीदों के विचारों को व्यापक आबादी तक पहुँचाया गया। साइकिल रैली, मशाल जुलूस, परचा वितरण, नुक्कड़ सभा, पुस्तक प्रदर्शनी, नुक्कड़ नाटक और फ़िल्म प्रदर्शनों के ज़रिये शहीदों के विचारों का प्रचार-प्रसार किया गया। विभिन्न वक्ताओं ने अपनी बात में कहा कि भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को याद करना नेताओं के लिए महज़ रस्म अदायगी हो सकती है लेकिन नौजवानों और मेहनतकशों के लिए यह उनकी शहादत से प्रेरणा लेकर समाज को बदल डालने की लड़ाई में दुगने जोश से लग जाने का मौक़ा है।

हरियाणा में नौजवान भारत सभा द्वारा 15 से 27 मार्च के बीच आयोजित शहीद संकल्प यात्रा ज़िला कैथल और जीन्द के अलग-अलग गाँवों और कस्बों में पहुँची। नौभास हरियाणा के संयोजक रमेश खटकड़ ने बताया कि शहीदों के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के मकसद से चलायी गयी यह विचार यात्रा चोशाला, शिमला, बालू, नौच, मोहलखेड़ा, सुरजाखेड़ा, उझाना, बेलरखा, धरोदी, करमगढ़, धमतान साहिब आदि गाँवों में तथा कलायत, नरवाना और कैथल शहरों में चलायी गयी। गाँव धमतान साहिब में शहीद संकल्प संध्या का आयोजन भी किया गया। भाजपा ने चुनाव से पहले हरियाणा की जनता से क़रीब 150 वायदे किये थे जिनमें रोज़गार देने, कच्चे कर्मचारियों को पक्का करने, 12वीं पास और बीए पास बेरोज़गारों को 6,000 और 9,000 बेरोज़गारी भत्ता देने, मनरेगा को आगे बढ़ाने, किसानों को उचित कृषि सुविधाएँ प्रदान करने, स्वामीनाथन आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करने जैसे वायदे शामिल थे। सरकार में आने के बाद भाजपा ने इन वायदों के प्रति 'एक चुप सौ सुख' की नीति अपना रखी है। उल्टा हरियाणा की जनता को जाति के नाम पर भयंकर रूप से बाँट दिया गया है। गाँव-गाँव में नुक्कड़ सभाओं के माध्यम से विभिन्न वक्ताओं ने अपनी बातों में लोगों को बताया कि आज अपने शहीदों के सपनों को याद करने का मतलब उनकी कही गयी बातों को याद करना ही है।

मुम्बई में भी शहीदों की याद में क्रान्तिकारी प्रचार अभियान चलाया गया। ज्ञात हो कि नौभास के दफ़्तर पर पुलिस और एटीएस (एण्टी टेरेरिस्ट स्क्वाड) ने छापा मारा था। पटना, बिहार में भी भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत दिवस की 85वीं बरसी के अवसर पर नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन और जागरूक नागरिक मंच के द्वारा शहर के गाँधी मैदान में पोस्टर प्रदर्शनी व पुस्तक प्रदर्शनी लगायीं गयीं इसके साथ ही व्यापक परचा वितरण भी किया गया। नौभास की वर्षा ने कहा की शहर की नागरिक आबादी और युवाओं ने शहीदों के विचारों और क्रान्तिकारी साहित्य के प्रति सकारात्मक रुख का प्रदर्शन किया।

इस प्रकार से 85वें शहीदी दिवस के अवसर पर देश भर में जनसंगठनों ने भारतीय क्रान्ति के प्रतीकों शहीद भगतसिंह, शहीद राजगुरु और शहीद सुखदेव को याद किया और उनके क्रान्तिकारी विचारों को जनता के बीच प्रचारित-प्रसारित किया।

रिपोर्ट - अरविन्द

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस (8 मार्च) के अवसर पर कुछ कविताएँ

धीरे-धीरे आगे बढ़ती है
अपनी देह और आत्मा में जकड़ी हुई
सदियों की बेड़ियों को तोड़ने के लिए उठ खड़ी
उन औरतों का प्रयास
आज़ादी की दिशा में बढ़ा हुआ कदम है
मज़दूर वर्ग को अवश्य ही देनी चाहिए दाद
और ज़ोरदार होनी चाहिए
उनकी वाहवाही
अगर दासता के खिलाफ़ उनकी नफ़रत और उमंग
आज़ादी की ओर बढ़ती है धीरे-धीरे
औरतों की सेना चलेगी
लड़ाकू मजदूरों की सेना के आगे-आगे।

– जेम्स कोनाली

(जेम्स कोनाली आयरलैंड के क्रान्तिकारी नेता थे, 1916 में डबलिन में हुए विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने उन्हें फांसी दे दी थी।)

जो पैदा होंगी हमारे बाद

यह मत कहो बहनो कि तुम
कुछ नहीं कर सकती
आस्था की कमी अब और नहीं
हिचक अब और नहीं
आओ, पूछें अपने आप से
क्या चाहते हैं हम?
पूर्ण मुक्ति चाहिए, नहीं चाहते कम
उड़ाने दो मखौल उन्हें, रुक जायेगी उनकी हँसी
एक दिन
वे दिन क्या दूर हैं?
क्या फर्क पड़ता है उससे
संघर्षों में झेलनी है दिक्कतें और तकलीफ़ें हमें
सुख उन बहनों के लिए होगा, जो पैदा होंगी
हमारे बाद।

– अज्ञात (फ्रांस)

औरत की नियति

कितनी कारुणिक है औरत की नियति,
कितना दुखद है उनका भाग्य,
हे सृष्टिकर्ता, हम लोगों पर तुम इतने निर्दय क्यों हों?
बरबाद हो गयी हमारी कच्ची उम्र
कुम्हला गये हमारे गुलाबी गाल
यहाँ दफ़्न सारी औरतें पत्नियाँ रही जीवनकाल में
फिर भी अकेली भटकती है उनकी रूह
मरने के बाद।

– क्यू
(वियतनाम, अट्ठारहवीं सदी)

मैं एक ठण्डी सँकरी धारा हुआ करती थी
बहती हुई जंगलों, पहाड़ों और घाटियों में
मैंने जाना कि ठहरा हुआ पानी
भीतर से मर जाता है
मैने जाना कि समुद्र की लहरों से मिलना
नन्हीं धराओं को नयी ज़िन्दगी लाता है
न तो लम्बा रास्ता
न अँधेरे खड्ड
न ही रुक जाने का लालच
रोक सके, मुझे आगे बढ़ते जाने से
अब
मैं जा मिली हूँ अन्तहीन लहरों से
संघर्ष में मेरा अस्तित्व है
और मेरा आराम है
मेरी मौत।

– मर्ज़िएह ओस्कोई

(क्रान्तिकारी ईरानी कवयित्री जिनकी शाह ईरान के एजेंटों ने 1977 में हत्या कर दी)

छात्रों-युवाओं के दमन और विरोधी विचारों को कुचलने की हरकतों का कड़ा विरोध

हैदराबाद विश्वविद्यालय में छात्रों के दमन और मुम्बई में आर.एस.एस. विरोधी पर्चे बाँटने पर नौजवान भारत सभा कार्यालय पर आतंकवाद निरोधक दस्ते के छापे की देश भर के जनवादी व नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं और विभिन्न जनसंगठनों की तरफ़ से की कड़ी निन्दा की गयी।

दिल्ली, मुम्बई, लखनऊ सहित कई शहरों में विभिन्न जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों ने प्रदर्शन किया और देशभर में छात्रों-युवाओं पर बढ़ते दमन-उत्पीड़न को रोकने की माँग की गयी।

उल्लेखनीय है कि 22 मार्च की रात के 2 बजे पुलिस और अगले दिन सुबह एटीएस वाले नौजवान भारत सभा कार्यालय पर आ धमके थे। कारण केवल यह था कि नौभास की मुम्बई इकाई ने देश को धर्म के नाम पर बाँटने की संघियों की राजनीति का भण्डाफोड़ करते हुए हज़ारों की संख्या में पर्चे बाँटे थे। छापेमारी के वाकये के बाद न तो नौभास ने अपने प्रचार अभियान को ही रोका और न ही उक्त पर्चे का वितरण ही बन्द किया बल्कि और भी व्यापक स्तर पर शहीदों के विचारों का और संघियों की गद्दारियों के कारनामों का प्रचार-प्रसार किया गया। संघियों द्वारा सच्चाई दबाने के लिए सरकारी तंत्र का इस्तेमाल किया जाना यही दर्शाता है कि ये लोग सच से कितना खौफ़ खाते हैं। नौभास के विराट ने बताया कि हम संघियों की ऐसी करतूतों से पीछे हटने वाले नहीं हैं। फासीवाद के उभार को जनता की ताक़त से ही पराजित किया जा सकता है बशर्ते हम ईमानदारी से जनता के बीच काम करें, उसके दुःख-तकलीफों में उसके साथ खड़े हों और जनशत्रुओं को बेनकाब ही न करें बल्कि विकल्प भी लोगों के सामने रखें।

नई दिल्ली में महाराष्ट्र सदन और लखनऊ में जीपीओ पर प्रदर्शन करते हुए विभिन्न जनसंगठनों के प्रतिनिधि और बुद्धिजीवी

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु के शहादत दिवस (23 मार्च) के मौक़े पर

भगतसिंह की बात सुनो!

बात यह है कि क्या धर्म घर में रखते हुए भी, लोगों के दिलों में भेदभाव नहीं बढ़ाता? क्या उसका देश के पूर्ण स्वतन्त्रता हासिल करने तक पहुँचने में कोई असर नहीं पड़ता? इस समय पूर्ण स्वतन्त्रता के उपासक सज्जन धर्म को दिमाग़ी ग़ुलामी का नाम देते हैं। वे यह भी कहते हैं कि बच्चे से यह कहना कि – ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है, मनुष्य कुछ भी नहीं, मिट्टी का पुतला है – बच्चे को हमेशा के लिए कमज़ोर बनाना है। उसके दिल की ताक़त और उसके आत्मविश्वास की भावना को ही नष्ट कर देना है। लेकिन इस बात पर बहस न भी करें और सीधे अपने सामने रखे दो प्रश्नों पर ही विचार करें तो भी हमें नज़र आता है कि धर्म हमारे रास्ते में एक रोड़ा है। मसलन हम चाहते हैं कि सभी लोग एक-से हों। उनमें पूँजीपतियों के ऊँच-नीच का, छूत-अछूत का कोई विभाजन न रहे। लेकिन सनातन धर्म इस भेदभाव के पक्ष में है। बीसवीं सदी में भी पण्डित, मौलवी जी जैसे लोग भंगी के लड़के के हार पहनाने पर कपड़ों सहित स्नान करते हैं और अछूतों को जनेऊ तक देने से इनकार है। यदि इस धर्म के विरुद्ध कुछ न कहने की क़सम ले लें तो चुप कर घर बैठ जाना चाहिए, नहीं तो धर्म का विरोध करना होगा। लोग यह भी कहते हैं कि इन बुराइयों का सुधार किया जाये। बहुत ख़ूब! छूत-अछूत को स्वामी दयानन्द ने जो मिटाया तो वे भी चार वर्णों से आगे नहीं जा पाये। भेदभाव तो फिर भी रहा ही। गुरुद्वारे जाकर सिख 'राज करेगा खालसा' गायें

और बाहर आकर पंचायती राज की बातें करें, तो इसका मतलब क्या है?

('धर्म और हमारा स्वाधीनता संग्राम' लेख से)

क्या विद्यार्थियों को जन्मते ही ख़ुशामद का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए? हम तो समझते हैं कि जब तक हिन्दुस्तान में विदेशी डाकू शासन कर रहे हैं तब तक वफ़ादारी करने वाले वफ़ादार नहीं, बल्कि ग़द्दार हैं, इनसान नहीं, पशु हैं, पेट के ग़ुलाम हैं। तो हम किस तरह कहें कि विद्यार्थी वफ़ादारी का पाठ पढ़ें।

सभी मानते हैं कि हिन्दुस्तान को इस समय ऐसे देश-सेवकों की ज़रूरत है, जो तन-मन-धन देश पर अर्पित कर दें और पागलों की तरह सारी उम्र देश की आज़ादी के लिए न्योछावर कर दें। लेकिन क्या बुड्ढों में ऐसे आदमी मिल सकेंगे? क्या परिवार और दुनियादार के झंझटों में फँसे सयाने लोगों में से ऐसे लोग निकल सकेंगे? इसके लिए तो वही नौजवान निकल सकते हैं जो किन्हीं जंजालों में न फँसे हों ओर जंजालों में पड़ने से पहले विद्यार्थी या नौजवान तभी सोच सकते हैं यदि उन्होंने कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी हासिल किया हो। सिर्फ़ गणित और ज्योग्राफ़ी का ही परीक्षा के पर्चों के लिए घोंटा न लगाया हो।

क्या इंग्लैण्ड के सभी विद्यार्थियों का कॉलेज छोड़कर जर्मनी के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए निकल पड़ना पोलिटिक्स नहीं थी? तब हमारे उपदेशक कहाँ थे जो उनसे कहते – जाओ, जाकर शिक्षा हासिल करो। आज नेशनल कॉलेज, अहमदाबाद के जो लड़के बारदोली के सत्याग्रह वालों की सहायता कर रहे हैं, क्या वे ऐसे ही मूर्ख रह जायेंगे? देखते हैं उनकी तुलना में पंजाब का विश्वविद्यालय कितने योग्य आदमी पैदा करता है? सभी देशों को आज़ाद करवाने वाले वहाँ के विद्यार्थी और नौजवान ही हुआ करते हैं। क्या हिन्दुस्तान के नौजवान अलग-अलग रहकर अपना और अपने देश का अस्तित्व बचा पायेंगे? नौजवानों को 1949 में विद्यार्थियों पर किये गये अत्याचार भूल नहीं सकते। वे यह भी समझते हैं कि उन्हें एक भारी क्रान्ति की ज़रूरत है। वे पढ़ें। जरूर पढ़ें! साथ ही पोलिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करें और जब ज़रूरत हो तो मैदान में कूद पड़ें और अपने जीवन इसी काम में लगा दें। अपने प्राणों का इसी में उत्सर्ग कर दें। वरन बचने का कोई उपाय नज़र नहीं आता।

('विद्यार्थी और राजनीति' लेख से)

भयानक साज़िश

आर.एस.एस. ने आज़ादी की लड़ाई में तो कभी हिस्सा नहीं ही लिया, उल्टे उस समय भी यह देश के लोगों को धर्म के नाम पर आपस में लड़ाने में लगा हुआ था। हम यहाँ एक लेख का अंश प्रस्तुत कर रहे हैं जो बताता है कि जब सारी जनता अंग्रेज़ों को देश से बाहर करने के संघर्ष में सड़कों पर थी, 1946-47 के उन दिनों में भी संघ अपने ही देश के लोगों के ख़िलाफ़ कैसी घिनौनी साज़िशों में लगा हुआ था। इसे प्रसिद्ध पत्रकार और नौसेना विद्रोह के भागीदार रहे सुरेन्द्र कुमार ने प्रस्तुत किया है।

इधर रा.स्व.से.सं. का एक सबसे अधिक लोमहर्षक तथा नग्न चित्र प्रकाश में आया है, उसे श्री राजेश्वर दयाल (आई.सी.एस., अब स्वर्गीय) ने अपनी पुस्तक ''ए लाइफ ऑफ़ अवर टाइम" (ओरियंट लांगमैन, 1998, पृ. 93-94) में प्रस्तुत किया है। वह 1946-47 की चर्चा करते हैं जब वह उत्तर प्रदेश के गृह सचिव थे। इस मानवद्वेषी संस्था ने किस तरह पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुस्लिम इलाकों में मकानों, सड़कों, गलियों तक के नक्शे तैयार किये थे, जनसंहार का कैसा षड्यंत्र रचा था और कैसे यह सब सम्बद्ध क्षेत्रों में सरसंघचालक एम.एस. गोलवलकर की उपस्थिति में किया गया था, यह पढ़ें राजेश्वर दयाल के ही शब्दों में:

"मैं बहुत ही गम्भीर स्वरूप का एक वृत्तान्त दर्ज करना चाहता हूँ, जब यू.पी. मंत्रिमंडल के टालमटोल और अनिर्णय के भयावह परिणाम निकले। साम्प्रदायिक तनाव का उन्माद अभी पूरे जोरों पर था कि वेस्टर्न रेंज की पुलिस के डिप्टी इन्सपेक्टर जनरल बी.बी.एल. जेतली, जो बहुत ही तपे-मँजे हुए और सुयोग्य अफसर थे, मेरे निवास-स्थान में अत्यन्त गुप्त रूप से आये। उनके साथ दो पुलिस अफ़सर थे, जिनके पास अच्छी तरह तालाबंद इस्पात के बड़े-बड़े ट्रंक थे। जब ट्रंक खोले गये तो प्रान्त के सारे के सारे पश्चिमी जिलों में साम्प्रदायिक आधार पर नरसंहार करने की कायरतापूर्ण साज़िश उजागर हो गयी। ट्रंक उस विशाल भू-क्षेत्र के हर शहर और गाँव के ऐसे ब्लूप्रिंटों (नक्शों) से सटासट भरे थे, जिनमें किसी भूलचूक की गुंजाइश नहीं थी और जिन्हें बिलकुल पेशेवर ढंग से तैयार किया गया था। इनमें मुस्लिम बस्तियों और मुस्लिम आबादी वाले इलाकों पर खूब मोटे-मोटे निशान अंकित थे। भिन्न-भिन्न लक्षित स्थानों तक कैसे पहुँचा जाये, इस बारे में और दूसरी चीजों के बारे में ब्यौरेवार निर्देश दिये गये थे। ये सब उनके महाअनर्थकारी मन्तव्य पर पर्याप्त प्रकाश डाल रहे थे।

"इस रहस्योदघाटन से अत्यन्त चिन्तित होकर मैं पुलिस पार्टी को सीधे प्रधानमंत्री (उस समय मुख्यमंत्री के लिए प्रीमियर-प्रधानमंत्री शब्द का उपयोग किया जाता था-अनु.) की कोठी में ले गया। वहीं एक बन्द कमरे में जेतली ने अपनी खोज की पूरी रिपोर्ट पेश की, जिसके सारे प्रमाण ट्रंकों में थे। रा.स्व.से.सं के अड्डों पर ठीक वक्त पर छापा मारे जाने से एक विराट षड्यंत्र का भंडाफोड़ हो गया। सारी साज़िश स्वयं संगठन के सुप्रीमो के निर्देशन और संचालन में सामंजस्यपूर्ण ढंग से रची गयी थी। जेतली और मैंने – हम दोनों ने – प्रमुख मुलज़िम, श्री गोलवलकर की फौरन गिरफ़्तारी पर ज़ोर दिया।

"पन्त जी अपने समक्ष जीते-जागते प्रमाण को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते थे। लेकिन गिरोह के रहनुमा को फौरन गिरफ़्तार करने के बजाय, जिसकी हम अपेक्षा कर रहे थे और जो कि रफ़ी अहमद किदवई, (गृहमंत्री - अनु.) ज़रूर करते, पन्त जी ने मसला मंत्रिमंडल की अगली बैठक में विचार-विमर्श के लिए पेश करने के वास्ते कहा। बेशक, यह राजनीतिक दृष्टि से नाज़ुक मसला था क्योंकि रा.स्व.से.सं. की जड़ें देश के जीवन में गहराई तक पहुँची हुई थीं। इसके अलावा और भी राजनीतिक मजबूरियाँ थीं, जिनकी वजह यह थी कि आर.एस.एस. के प्रच्छन्न तथा प्रत्यक्ष, दोनों प्रकार के हमदर्द खुद कांग्रेस पार्टी, यहाँ तक कि मंत्रिमंडल में भी पाये जा सकते थे। अपर हाउस (विधान परिषद– अनु.) के अध्यक्ष आत्म गोविन्द खेर स्वयं रा.स्व.से.सं. से संलग्न थे और उनके पुत्र रा.स्व.से.सं. के प्रत्यक्ष सदस्य थे, यह बात किसी से छुपी नहीं थी।

"मंत्रिमंडल की बैठक में आम ढंग से टालमटोल होता रहा और अप्रासंगिक बातें की गयीं। पुलिस ने एक ऐसी साज़िश का पर्दाफ़ाश किया था, जो पूरे प्रान्त को आग में झोंक सकती थी। सम्बद्ध अधिकारी हार्दिक प्रशंसा के पात्र थे – इस तथ्य की विचार-विमर्श के दौरान चर्चा ही नहीं हुई। आखिर में जो तय हुआ, वह यह कि श्री गोलवलकर के नाम एक चिट्ठी भेजी जाये, जिसमें जमा किये गये प्रमाणों की अन्तर्वस्तु और उसका स्वरूप उन्हें बताया जाये और इस बारे में उनसे सफ़ाई माँगी जाये। अगर ऐसी चिट्ठी मेरे ज़ोर देने पर जारी की जाती है, तो उसे वज़नदार बनाने के लिए खुद प्रधानमंत्री (पन्तजी) के नाम से भेजा जाना चाहिए। पन्तजी ने मुझे मसौदा तैयार करने के लिए कहा, जो मैंने उनकी ही विशिष्ट शैली की नकल करते हुए बनाया। चिट्ठी फौरन भेजी जानी थी। दो पुलिस अफसरों को यह काम सौंपा गया परन्तु गोलवलकर को पहले ही सावधान कर दिया गया था। इलाके (पश्चिमी यू.पी.–अनु.) में कहीं उनका नामोनिशां भी नहीं था। खोजते-खोजते पता चला कि वह दक्षिण की ओर चले गये हैं। वह पीछा करने वालों को चकमा देने में सफल रहे। स्थान-स्थान पर उनका पीछा किया जाता रहा, जिसका कोई फल नहीं निकला और कई हफ़्ते गुज़र गये।

"फिर आया 1948 का 30 जनवरी का दिन, जब शान्ति का सर्वोच्च दूत रा.स्व.से.सं. के एक मतान्ध की गोली का शिकार बना। पूरे त्रासदीभरी प्रकरण पर मुझे उबकाई आने लगी।"

प्रस्तुति: सुरेन्द्र कुमार

('दायित्वबोध' पत्रिका से साभार)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव • सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006